स्वरप्रक्रियाप्रकाश

डॉ० वामदेव मिश्र

प्रकाशक
गीता संस्कृत प्रकाशन
के० २०/१४० राजमन्दिर
वाराणसी–१

मूल्य : आठ रुपये
आवृत्ति–प्रथम १०००

मुद्रक
स्वस्तिक मुद्रणालय
गोलघर, वाराणसी

प्राक्कथन

विश्वविद्यालय के छात्रों को वेद के सामान्य ज्ञान कराने के लिए संहिताओं आदि के अंश निर्धारित किये जाते हैं। ऐसे अंशों का संकलन किया जाता है, जिनसे वैदिक वाङ्मय का सामान्य परिचय मिल जाय और छात्र वेद-विद्या के सम्बन्ध में कुछ विचार करने में समर्थ हो जाय। वैदिक मंत्रों के ज्ञान के लिए स्वर-ज्ञान नितान्त आवश्यक है, अतः स्वर-ज्ञान प्राप्त करके संहिता का परिशीलन करना चाहिये। डॉ० वामदेव मिश्र ने छात्रों की आवश्यकता को ध्यान में रखकर 'स्वरप्रक्रियाप्रकाश' पुस्तक की रचना की है। इसमें ऐसे महत्त्वपूर्ण सूत्रों की व्याख्या और आवश्यक टिप्पणियाँ प्रस्तुत की गयी हैं, जिनके अनुशीलन से स्वर-प्रक्रिया का सामान्य घरातल तैयार हो जाता है और छात्र उसका सम्बल लेकर संहिता के परिशीलन में प्रवृत्त हो सकता है।

डॉ० मिश्र ने विषय का प्रतिपादन सरल रीति से किया है और पदों की सिद्धि में अपेक्षित नियमों का निर्देश किया है। भूमिका और परिशिष्टों की योजना से पुस्तक का महत्त्व और भी बढ़ गया है।

डॉ० मिश्र ने वेद का अध्ययन प्राच्य तथा पाश्चात्य दोनों शैलियों से किया है। इन्होंने स्वर विषयक पुस्तक की रचना से छात्रों का उपकार किया है। विश्वास है कि इनकी यह रचना वेद के छात्रों के लिए अत्यधिक उपयोगी होगी।

४—४—'७५

काशी विद्यापीठ, वाराणसी।

अमरनाथ पाण्डेय

अध्यक्ष, संस्कृत-विभाग

येनाक्षरसमाम्नायमधिगम्य महेश्वरात् ।
कृत्स्नं व्याकरणं प्रोक्तं तस्मै पाणिनये नमः ।।
येन धौता गिरः पुंसां विमलैः शब्दवारिभिः ।
तमश्चाज्ञानजं भिन्नं तस्मै पाणिनये नमः ।।

—पाणिनीय शिक्षा

विषयानुक्रमणिका

पृष्ठ

चतुर्थ प्रकाश—अव्युत्पन्न प्रातिपदिक के स्वर का विचार—

अव्युत्पन्न प्रातिपदिक का सामान्य स्वर ३१, 'गुद' शब्द का स्वर ३२, हिष्ठ, वत्सर, ति, शद् तथा थ से अन्त होने वाले शब्दों का स्वर ३३, 'कृष्ण' शब्द का स्वर ३४, एवं विकल्प ३५, 'शुक्ल' और 'गौर' शब्दों का स्वर ३६, दिशा से भिन्न अर्थ वाले 'आशा' शब्द का स्वर ३७, घृतादिगण पठित शब्दों का स्वर ३८, 'ज्येष्ठ' और 'कनिष्ठ' शब्दों का स्वर ३९, नपुंसक लिङ्ग वाले शब्दों का स्वर ४०, स्वाङ्गवाचक एवं सर्वनाम शब्दों का स्वर ४१, उन, ऋ तथा वन् से अन्त होने वाले शब्दों का स्वर ४२, 'अक्ष' शब्द का स्वर ४३, ग्रामादिगण पठित शब्दों के स्वर ४४, 'कपिकेश' और 'हरिकेश' शब्दों का स्वर ४५, 'न्यङ्' तथा 'स्वर्' शब्दों का स्वर ४६, 'विल्व' 'भक्ष्य' तथा 'वीर्य' शब्दों का स्वर ४७, 'त्वत्', 'त्व' 'सम' तथा 'सीम' शब्दों का स्वर ४८, अथर्ववेद में 'सीम' शब्द का स्वर ४९, निपातों का स्वर ५०, उपसर्गों का स्वर ५१, एवादिगण में पठित शब्दों का स्वर ५२, चादिगण में पठित शब्दों का स्वर ५३, पाद के अन्त में 'यथा' पद का स्वर ५४, द्विरुक्त पद में परवर्ती पद का स्वर ५५। ३५–४५

पञ्चम प्रकाश—सम्बोधन पद के स्वर का विचार—सम्बोधन पद का आदि उदात्त स्वर ५६, सम्बोधन का सर्वानुदात्त स्वर ५७, सम्बोधन पद का अविद्यमानवद्भाव ५८, अविद्यमानवद्भाव का निषेध ५९, अविद्यमान वद्भाव का विकल्प ६०, स्वर-विधि में पराङ्गवद्भाव ६१, पराङ्गवद्भाव की विशेष विधि, अव्यय पदों के पराङ्गवद्भाव का निषेध, अव्ययीभाव समास वाले पदों का पराङ्गवद्भाव, पूर्वाङ्गवद्भाव। ४६–५२

पदसंकेत

अथर्व॰ सं॰—अथर्ववेद संहिता
अ॰ प॰ से॰—अदादि परस्मैपद सेट्
अम॰—अमरकोष
आ॰ श्रौ॰—आश्वलायन श्रौतसूत्र
उ॰—उणादि सूत्र
ऋक्प्रा॰—ऋक्प्रातिशाख्य
ऋ॰ प॰ पा॰—ऋग्वेद पदपाठ
ऋ॰ मा॰ भू॰—ऋग्वेद भाष्य भूमिका
ऋ॰ सं॰—ऋग्वेद संहिता
ऐ॰ ब्रा॰—ऐतरेय ब्राह्मण
क्र्या॰ प॰ से॰—क्र्यादि परस्मैपद सेट्
गो॰ ब्रा॰—गोपथ ब्राह्मण
चु॰ उ॰ से॰—चुरादि उभयपद सेट्
जु॰ उ॰ अ॰—जुहोत्यादि उभयपद अनिट्
ता॰ ब्रा॰—ताण्ड्य ब्राह्मण
तु॰ उ॰ अ॰—तुदादि उभयपद अनिट्
तै॰ पा॰—तैत्तिरीय पदपाठ
तै॰ प्रा॰—तैत्तिरीय प्रातिशाख्य
तै॰ ब्रा॰—तैत्तिरीय ब्राह्मण
तै॰ सं॰—तैत्तिरीय संहिता
दि॰ प॰ अ॰ दिवादिपरस्मैपद अनिट्
ना॰ शि॰—नारदशिक्षा
निरु॰—निरुक्त
पा॰ शि॰—पाणिनीयशिक्षा
पा॰ सू॰—पाणिनीय सूत्र
पृ॰—पृष्ठ
भ्वा॰ प॰ से॰—भ्वादि परस्मैपदसेट्
महा॰—महाभाष्य
मे॰ को॰—मेदिनी कोष
या॰ शि॰—पाणिनीयशिक्षा
रु॰ आ॰ से॰—रुधादि आत्मनेपद सेट्
वा॰—वार्तिक
वाक्य॰—वाक्यपदीय
वा॰ प॰ पा॰—वाजसनेय पदपाठ
वा॰ सं॰—वाजसनेय संहिता
श॰ ब्रा॰—शतपथ ब्राह्मण
शि॰ सं॰—शिक्षा संग्रह
ष॰ ब्रा॰—षड्विंश ब्राह्मण
सा॰ सं॰—सामवेद संहिता
सि॰ को॰—सिद्धान्तकौमुदी
स्वरा॰—स्वरानुक्रमणी
स्वा॰ उ॰ अ॰—स्वादि उभयपद अनिट्

भूमिका

अर्थ की दृष्टि से स्वर शब्द बड़ा ही व्यापक हैं। भाषा में इसका प्रयोग अनेक अर्थों में मिलता है। 'स्वयं राजन्ते इति स्वराः'[१] यह स्वर शब्द का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ है। वैदिक वाङ्मय में वाक्[२] सूर्य[३] सोम[४] पशु[५] प्रजपति[६] श्री[७] श्वास[८] (नासासमीर) आदि के लिए स्वर शब्द का प्रयोग है। सामान्य व्यवहार में ध्वनि के लिए स्वर शब्द का व्यवहार किया जाता हे। अ आ आदि अचों को भी स्वर कहा जाता है।[९] इनमें रहने वाले उदात्त आदि धर्म भी स्वर कहे जाते हैं। [१०]इन धर्म स्वरों से उत्पन्न होने वाले षड्ज[११] आदि को तथा उनके तार मध्य और मन्द्र[१२] भेद भी स्वर शब्द से व्यवहृत होते हैं। इनमें से इस ग्रन्थ का वर्ण्य विषय उदात्त आदि धर्म स्वर हैं।

'स्वर' शब्द का अर्थ

---

१. महा० १।२।२९।

२. (क) निरु० १।११।३१।

(ख) 'अधिस्वरे—' (ऋ० सं० ८।७२।७)।

(ग) 'स्वरश्चमे—' (वा० सं० १८।१)।

३. एष ह्वै सूर्यो भूत्वाऽमुष्मिल्लोके स्वरति तद्यत् स्वरति तस्मात् स्वरः' (गो० ब्रा० १।५।१४।

४. 'यदाह स्वरोऽसीति सोमं वा एतदाह' (गो० ब्रा०।५।१४।)।

५. (क) 'पशवः स्वरः' (गो० ब्रा० २।३।२२ तथा २।४।२।

(ख) 'पशवो वै स्वरः' (ऐ० ब्रा० ३।२४)।

६. 'प्रजापतिः स्वरः' (ष० ब्रा० ३।७)।

७. 'श्री वै स्वरः' (श० ब्रा० ११।४।२।१०)।

८. (क) 'प्राणः स्वरः' (ता० ब्रा० ७।१।१० तथा १७।१२।२)।

(ख) 'प्राणो वै स्वराः (ता० ब्रा० २४।११।९)।

९. (क) 'अ इति आ इति स्वराः (ऋक्तन्त्र १।२)।

(ख) 'अचः स्वराः' (सि० कौ० संज्ञाप्रकरण)।

१० (क) उदात्तश्चानुदात्तश्च स्वरितश्च त्रयः स्वराः' (ऋक्प्रा० ३।१)।

(ख) उदात्तश्चानुदात्तश्च स्वरितश्च स्वरास्त्रयः (पा० शि० ११)।

११. 'शारीराः वैणवाश्चैव सप्त षड्जादयः स्वराः (ना० शि० ६।२७)।

१२. 'मध्यादि त्रिकस्वरे' (मे० को० रान्त ९४)।

इन धर्मस्वरों की संख्या में पर्याप्त मतभेद हैं कुछ महत्त्वपूर्ण मत निम्नलिखित हैं।

स्वरों की संख्या

(क) एक स्वर—एक श्रुति ।
—(ऐतरेय ब्राह्मण की स्वर व्यवस्था)

(ख) दो स्वर—उदात्त अनुदात्त ।
—कात्यायन[1]

(ग) तीन स्वर—उदात्त अनुदात्तस्वरित ।
—पाणिनि[2]

(घ) चार स्वर—उदात्त अनुदात्त स्वरित प्रचय ।
—तै० प्र०[3]

(ङ) पाँच स्वर—उदात्त अनुदात्त स्वरित प्रचय निघात ।
—नारद[4]

(च) सात स्वर—उदात्त उदात्ततर अनुदात्त अनुदात्तर स्वरित स्वरितगत उदात्त एवं एकश्रुति ।
—पतञ्जलि[5]

समीक्षात्मक ढंग से विचार करने पर यह प्रतीति होता है कि उदात्त मुख्य स्वर है। इसके अन्तर्गत उदात्ततर तथा स्वरितगत उदात्त स्वर अन्तर्भूत हैं। इसी प्रकार अनुदात्त मुख्य स्वर है और अनुदात्ततर स्वर उसमें अन्तर्भूत है। निघात शब्द अनुदात्त का ही पर्याय है। एकश्रुति स्वर भी प्रचय स्वर का पर्याय है। यह स्वर सञ्चार के पूर्व अनुदात्त और सञ्चार के बाद उदात्तवत् होता है।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि प्रकृति की दृष्टि से धर्मस्वर मूलतः तीन ही हैं—उदात्त अनुदात्त तथा स्वरित। इनसे अतिरिक्त स्वर इनके भेदमात्र हैं।

ये उदात्त आदि स्वर स्वभाव की दृष्टि से एक दूसरे से भिन्न है, जिनका संक्षिप्त परिचय निम्नलिखित है :—

स्वरों का स्वभाव परिचय

उदात्त—'उत् उच्चैः आदीयते उच्चार्यते इति उदात्तः'—यह उदात्त शब्द का व्युत्पत्ति लभ्य अर्थ है। पारिभाषिक रूप से जो वर्ण स्वर कण्ठ तालु आदि स्थानों के ऊपरी हिस्से से

१. वा० प्रा० १ । १ । २९ ।
२. पा० सू० १ । २ । २९, ३०, ३१ ।
३. तै० प्रा० २३ । १८–२० ।
४. ना० शि० १ । ७ । १९ ।
५. महा० १ । २ । ३३ ।

उच्चारित हों उन्हें उदात्त कहते हैं।[१] सभी स्वरों में उदात्त स्वर मुख्य हैं। सामान्यतया या कुछ अपवादों को छोड़कर एक पद में एक उदात्त होता है, शेष सभी अच् अनुदात्त होते हैं।[२] देवताद्वन्द्व समास वाले पदो में दो या दो से अधिक भी उदात्त होते हैं।[३] स्वर निर्धारण करते समय उदात्त स्वर का ही प्रायः पहले निर्धारण किया जाता है। इस स्वर के लिए सामवेद तथा ब्राह्मण ग्रन्थों को छोड़कर अन्य किसी भी सहिताओं में स्वर चिह्न का प्रयोग नहीं होता है। स्वरितगत उदात्त तथा उदात्ततर स्वर इसीके भेद हैं।

अनुदात्त—'न उदात्तः अनुदात्तः' यह अनुदात्त शब्द की व्युत्पत्ति है। पारिभाषिक रूप से जो वर्ण स्वर तालु आदि स्थानों के नीचे के हिस्से उच्चरित हों उन्हें अनुदात्त कहते है।[४] एक पद में अच् को छोड़कर अन्य सभी अचों का अनुदात्त स्वर होता है।[५] इस स्वर के सङ्केत के लिए वर्ण के नीचे पड़ी रेखा दी जाती है।

इस शब्द की रचना से ऐसा प्रतीत होता है कि उदात्त का अभाव अनुदात्त है, परन्तु दोनों का सम्वन्ध तेज अन्धकार के समान नहीं है। तेज तथा अन्धकार एक दूसरे के अभाव स्वरूप हैं, किन्तु उदात्त का अभाव अनुदात्त तथा अनुदात्त का अभाव उदात्त नहीं हैं, बल्कि उदात्त के अभाव में अनुदात्त और अनुदात्त के अभाव में उदात्त का व्यवस्थानुसार प्रयोग होता है। ये दोनों स्वतन्त्र स्वर हैं। इन दोनों का स्वभाव सर्वथा एक दूसरे से भिन्न हैं। प्रयोग भेद से अनुदात्त स्वर को अनुदात्तर भी कहा जाता है। 'निघात' शब्द अनुदात्त का ही पर्याय है। बलावल की दृष्टि से यह उदात्त तथा स्वरित दोनों की अपेक्षा अल्प बल वाल।

स्वरित—'स्वर्यते इति स्वरितः'—यह स्वरित शब्द की व्युत्पत्ति है। पारिभाषिक रूप से उदात्त तथा अनुदात्त के समाहार को स्वरित कहते हैं।[६] इस स्वर के लिए वर्ण के ऊपर खड़ी रेखा दी जाती है।

वैदिक साहित्य में स्वरितके अनेक प्रकार मिलते हैं जिनका वर्णन तत्तत् शाखागत प्रतिशाख्यों में है यहाँ उनका संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया जाता है।

---

१. द्र० सू० सं० १।
२. द्र० सूत्र सं० ५।
३. द्र० सूत्र सं० ८७।
४. द्र० सूत्र सं० २।
५. द्र० सूत्र सं० ५।
६. द्र० सूत्र सं० ३।
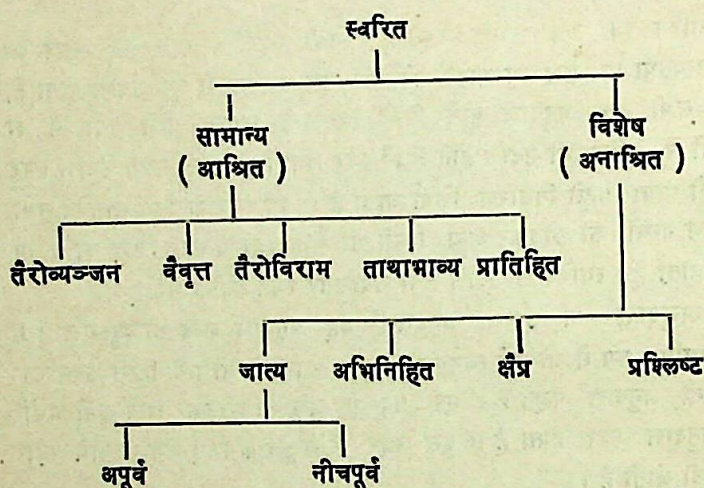
सामान्य स्वरित – इसे आश्रित स्वरित भी कहते हैं। उदात्त के बाद अनुदात्त का, उसके बाद उदात्त या स्वरित न होने पर, स्वरित स्वर होता है; जैसे—'अ॒ग्निम् । ई॒ळे॒ ।'[2] = 'अ॒ग्निमी॑ळे—'[3] इस उदाहरण में 'ग्नि, के इकार का उदात्त स्वर है, उसके बाद वर्तमान 'ईळे' के अनुदात्त ईकार का स्वरित स्वर होता है। इसका तात्पर्य यह है कि आश्रित स्वरित का निर्धारण उदात्त के निर्धारण के बाद किया जाता है।

परिस्थिति भेद से इसी स्वरित के तैरोव्यञ्जन, वैवृत्त, तैरोविराम तथाभाव्य तथा प्रातिहित भेद मिलते हैं।

तैरोव्यञ्जन—इस पद में 'तिर' और 'व्यञ्जन' ये दो पद हैं, जिनका क्रमशः अर्थ है व्यवधान तथा व्यञ्जन वर्ण। इस प्रकार व्यञ्जन वर्ण के व्यवधान वाले स्वरित को तैरोव्यञ्जन स्वरित कहते हैं[4]; जैसे—'अ॒ग्निमी॑ळे—'[5] उदाहरण में ही 'ग्नि' के उदात्त इकार तथा 'ई॒ळे' के अनुदात्त ईकार के बीच में आधी मात्रा वाले 'म्' व्यञ्जन का व्यवधान होने पर भी ईकार का स्वरित स्वर हो गया है।

---

१. द्र० सूत्र सं० ८।
२. द्र० ऋ० प० पा० १। १। १।
३. ऋ० सं० १। १। १।
४. तै० प्रा० २०। ७–८।
५. ऋ० सं० १। १। १।

वैवृत्त—दो अचों के बीच सन्धि प्राप्त होने पर जहाँ सन्धि नहीं होती उसे विवृत्ति कहते हैं[१]। विवृत्ति के स्थल में एक मात्रा काल का विराम होता है[२]। ऐसे विराम का व्यवधान होने पर भी उदात्त के बाद के अनुदात्त का स्वरित हो जाता है[३] ऐसे स्वरित को वैवृत्त कहते हैं; जैसे—'सत्यानृते अव[४] इस उदाहरण में ते' के उदात्त एकार के बाद विवृत्ति है और उसके बाद वर्तमान अनुदात्त 'अ' कार का स्वरित स्वर हो गया है।

तैरोविराम—समास वाले पदों का पदपाठ करते समय पूर्व एवं उत्तर पदों के बीच ह्रस्व मात्रा काल का व्यवधान होता है[५]। इस प्रकार का व्यवधान होने पर भी जहाँ पूर्ववर्ती उदात्त के प्रभाव से परवर्ती अनुदात्त का स्वरित स्वर होता है उसे तैरोविराम स्वरित कहते हैं[६]; जैसे—'गोपताविति गोऽपतौ[७]' यहाँ 'गो' के उदात्त ओकार के बाद ह्रस्वमात्रा काल का व्यवधान होने पर भी 'प' के अनुदात्त का स्वरित हो गया है।

ताथाभाव्य—दो उदात्तों के बीच वर्तमान अनुदात्त का स्वरित होता है, उसे ताथाभाव्य स्वरित कहते हैं[८]; जैसे 'तनूनपादिति तनूनपात्[९]' इस उदाहरण में द्वितीय 'तनूनपात्' में 'त' तथा 'न' के आकार उदात्त स्वर है और उसके बीच वर्तमान 'नू' के अनुदात्त ऊकार का स्वरित स्वर हो गया है।

प्रातिहित—दो स्वतन्त्र पदों में अन्तोदात्त पहले पद के उदात्त स्वर के प्रभाव से बाद वाले आद्यनुदात्त पद के अनुदात्त स्वर का स्वरित होता है[१०]। इसे प्रातिहित स्वरित कहते हैं; जैसे—'इषे। त्वा। ऊर्जे। त्वा।'[११] = 'इषेत्वर्ज्जेत्वा[१२]—' यहाँ द्वितीय 'त्वा' के अनुदात्त आकार का स्वरित हो गया है।

---

१. ऋक्प्रा० २।३।
२. ऋक्प्रा० २।७९।
३. द्र० सूत्र सं० ६।
४. ऋ० सं० ७।४१।३।
५. वा० प्रा० ५।१।
६. वा० प्रा० ५।१।
७. वा० प० पा० १।१।
८. वा० प्र० १।१२०।
९. तै० प० पा० ४।१।८।
१०. तै० प्रा० २०।९।
११. तै० प० पा० १।१।१।
१२. तै० सं० १।१।१।

विशेष स्वरित—इस प्रकार के स्वरित को अपनी सत्ता के लिये किसी उदात्त पर निर्भर न रहने के कारण अनाश्रित स्वरित भी कहते हैं। इसके अन्तर्गत जात्य अभिनिहित क्षैप्र तथा प्रश्लिष्ट स्वरितों की गणना की जाती है। इनका निर्धारण पदों में सर्वप्रथम होता है।

जात्य स्वरित—जाति से ही जो स्वर स्वरित होता है उसे जात्य स्वरित कहते हैं[१]; जैसे—'क्व'[२], 'कन्या'[३]। इनमें 'क्व' तथा 'न्यां' के अचों का स्वरित स्वर है। इस स्वरित की समीक्षा करने से यह प्रतीत होता है कि एक पद में यण् सन्धि के स्थल में ऐसे स्वरित मिलते हैं।

इस स्वरित के दो भेद हैं अपूर्व तथा नीचपूर्व। जिस जात्य स्वरित के पहले अनुदात्त नहीं होता है, उसे अपूर्व तथा जिसके पूर्व अनुदात्त स्वर होता है, उसे नीचपूर्व कहते हैं।[४] उपर्युक्त 'क्व' तथा 'कन्या' पद क्रमशः इनके उदाहरण हैं।

अभिनिहित स्वरित—पदान्त 'ए' या 'ओ' के बाद ह्रस्व अकार का लोप या पूर्वरूप होने पर उससे उत्पन्न स्वरित को अभिनिहित स्वरित कहते हैं[५]; जैसे—'ते। अवधन्त।'[६] = 'तेऽवर्धन्त—'[७] इस उदाहरण में अकार का पूर्वरूप हो गया है। अतः यहाँ अभिनिहित स्वरित है।

क्षैप्र स्वरित—इ, उ, ऋ तथा ऌ के बाद असमान स्वर वर्ण आने पर क्रमशः य् व् र् तथा ल् होता है। प्रातिशाख्य की भाषा में इस सन्धि को क्षैप्र कहते हैं और इस सन्धि से उत्पन्न स्वरित क्षैप्र स्वरित है[८]; जैसे—'अभि। अभि।'[९] = 'अभ्यभि—'[१०]। इस उदाहरण में 'भ्य' के अकार का क्षैप्र स्वरित स्वर है

---

१. ऋक्प्रा० ३। ८।

२. ऋ० सं० ५। ६१। २।

३. ऋ० सं० ४। ५८। ९।

४. ऋक्प्रा० (उ० भा०) ३। ८।

५. ऋक्प्रा० २। ३४–५०।

६. ऋ० प० पा० १। ८५। ७।

७. ऋ० सं० १। ८५। ७।

८. द्र० सूत्र सं० ११।

९. ऋ० प० पा० ९। ११०। ५।

१०. ऋ० सं० ९। ११०। ५।

प्रश्लिष्ट स्वरित—दीर्घ गुण तथा वृद्धि सन्धियों को प्रातिशाख्यों में पारिभाषिक रूप से प्रश्लिष्ट सन्धि कहते हैं[१]। इनमें से केवल दो ह्रस्व इकारों की दीर्घ सन्धि होने पर ही सन्धिज अच् का प्रश्लिष्ट स्वरित स्वर होता है[२]; जैसे—'स्रुचि । इव ।'[३] = 'स्रुचीव'[४] इस उदाहरण में 'ची' के दीर्घ ईकार का प्रश्लिष्ट स्वरित स्वर है।

एकश्रुति—उदात्त आदि तीनों पदों के अतिरिक्त 'एकश्रुति' पद का स्वर के लिये व्यवहार होता है। प्रचय, उदात्तश्रुति आदि एकश्रुति के पर्याय हैं[५]। आश्वलायन[६] याज्ञवल्क्य[७] पाणिनि[८] पतञ्जलि[९] वामन जयादित्य[१०] शौनक[११] आदि के एकश्रुति स्वर के लिये अपने अपने स्वतन्त्र मत हैं। सामान्यतया स्वरित के बाद आने वाले एक या अनेक अनुदात्तों का एकश्रुति स्वर होता है,[१२] जैसे—'इमं मे' गङ्गे यमुने सरस्वति—[१३] इस उदाहरण में 'मे' के स्वरित एकार के बाद वर्तमान 'गङ्गे यमुने सरस्वति' पदों के सभी अचों का एकश्रुति स्वर होता है।[१४]

---

१. ऋक्प्रा० २। १५–२०।
२. ऋक्प्रा० ३। १३।
३. ऋ० प० पा० १०। ९१। १५।
४. ऋ० सं० १०। ९१। १५।
५. शि० सं० पृ० २१६।
६. 'उदात्तानुदात्तस्वरितानां परः सन्निकर्ष एकश्रुत्यम्' (आ० श्रौ० १। २)।
७. 'उच्चानुदात्तयोर्योगे
 स्वरितः स्वार उच्यते।
 ऐक्यं तत्प्रचयः प्रोक्तः
 सन्धिरेष मिथोद्भुतः। (या० शि० २२८)।
८. द्र० सूत्र सं० ८।
९. महा० १। २। ३३।
१०. काशिका० १। २। ३३।
११. ऋक्प्रा० ३। १९।
१२. द्र० सूत्र सं० ८।
१३. ऋ० सं० १०। ७५। ५।
१४. ऋक्प्रा० ३। १९।

निघात—एकश्रुति के समान ही निघात शब्द का भी स्वर के लिये व्यवहार किया जाता है। इस स्वर के लिये भी अनेक मतवाद हैं, किन्तु यहाँ यह ज्ञातव्य है कि निघात स्वर अनुदात्त ही है। उसी के लिये पाणिनीय सम्प्रदाय के वृत्तिकारों ने निघात शब्द का प्रयोग किया है। यह निघात अनुदात्त के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है।

इन स्वरों से सम्बन्धित ज्ञान का अनेक दृष्टियों से विशेष महत्त्व है, जिनमें से महत्त्वपूर्ण कुछ बातें निम्नलिखित हैं—

स्वरज्ञान का महत्त्व

पदस्वरूप ज्ञान—स्वर ज्ञान का महत्त्वपूर्ण उद्देश्य पद के आकार का ज्ञान है। इसके द्वारा ही वैदिक संहिताओं में सामगान को छोड़कर पद के आकार का ज्ञान होता है। सामान्यतया एक पद में एक उदात्त होता है, शेष सभी अनुदात्त होते हैं;[१] जैसे—'नतस्य—'[२] इस मन्त्रांश में 'न' तथा 'त' के अकार का उदात्त स्वर है। अतः ये दोनों स्वतन्त्र पद हैं।

शब्दार्थज्ञान—अर्थ की दृष्टि से शब्द दो प्रकार के होते हैं—१. एकार्थक, २. अनेकार्थक। एकार्थक शब्दों के अर्थज्ञान में तो कोई कठिनाई नहीं होती है, किन्तु अनेकार्थक शब्दों के सन्दर्भ में यह बात नहीं है। उसके अर्थज्ञान के लिये अर्थज्ञापकों[३] की अपेक्षा होती है और उसमें भी विशेषतः स्वर की।

उदाहरणार्थ 'नतस्य—'[४] इस मन्त्रांश के दो अर्थ प्रतीत होते हैं—(१) 'उसका नहीं'—, तथा (२) 'नत (नम्र) का—'। इनमें कौन सा अर्थ मान्य है यह निर्णय स्वर के माध्यम से होता है। 'न' तथा 'तस्य' ये दो स्वतन्त्र पद हैं। अतः 'उसका नहीं' अर्थ ही मान्य है।

व्यङ्कटमाधव के अनुसार अन्धकार में प्रकाश लेकर चलने वाला व्यक्ति जैसे कहीं भी गिरता नहीं है वैसे ही स्वर की सहायता से किया गया अर्थ सन्देहरहित होता है।[५]

---

१. द्र० सूत्र सं० ५।
२. वा० सं० ३२। २।
३. संयोगो विप्रयोगश्च साहचर्यं विरोधिता।
अर्थः प्रकरणं लिङ्गं शब्दस्यान्यस्य सन्निधिः॥
सामर्थ्यमौचितिः देशः कालो व्यक्तिस्वरादयः।
शब्दार्थस्यानवच्छेदे विशेषस्मृतिहेतवः॥ (वाक्य० २। ३१७)।
४. वा० सं० ३२। २।
५. अन्धकारे दीपिकाभिर्गच्छन्न स्खलति क्वचित्।
एवं स्वरैः प्रणीतानां भवन्त्यर्थाः स्फुटा इति॥ (स्वरा० १। ८)।

गानस्वरों का ज्ञान—उदात्त आदि स्वरों से ही षड्ज आदि गान स्वरों की उत्पत्ति हुई।[१] स्वरों के तारतम्यानुसार गान स्वरों से युक्त सामगान होता है। इनके भेद से गान स्वरों में विविधतायें आती हैं। अतः इन गान स्वरों के स्वरूप, विविधता तथा उनकी स्थिति के ज्ञान के लिये उदात्तादि स्वरों का ज्ञान आवश्यक है।

श्रुतिमाधुर्य—स्वरों का यथावत् उच्चारण करने से वाक्य सुनने में मधुर तथा क्रमबद्ध लगता है। इस गुण की प्राप्ति उदात्त आदि स्वरों के ज्ञान से ही सम्भव है।

व्याकरण के अध्ययन की पूर्णता—अन्य व्याकरणों के साथ साथ पाणिनीय व्याकरण को समझने के लिये स्वर का ज्ञान नितान्त अपेक्षित है। उदाहरणार्थ 'स्वरितेनाधिकार':[२] सूत्र से ही 'अधिकार' तथा 'अनुवृत्ति' का ज्ञान होता है, और वह स्वरित के ऊपर ही निर्भर है। इसके अतिरिक्त स्वर सम्बन्धी विचारों के प्रतिपादक सूत्रों का भी ज्ञान स्वरज्ञान से ही सम्भव है।

इस प्रकार स्वरशास्त्र का विषय अत्यन्त गम्भीर एवं महत्त्वपूर्ण है किन्तु खेद है कि इधर समय की लम्बी अवधि से इसका अध्ययन प्रस्तुत प्रणयन पठन-पाठन की परम्परा से उत्सन्न प्रायः हो गया है विषय की दुरूहता तथा पठन-पाठन की परम्परा प्रचलन की कमी के कारण इस दिशा में अभिरुचि होने पर भी लोग प्रवृत्त होने में घबड़ाहट का अनुभव करने लगते थे।

अतः इस सन्दर्भ में ऐसे प्रणयन की आवश्यकता थी जो हिन्दी भाषा के माध्यम से पाणिनि के स्वर विषयक महत्त्वपूर्ण सिद्धान्तों की ओर आधुनिक अध्येतृवर्ग का ध्यान आकृष्ट कर सके। इस दृष्टि से पाणिनि के स्वर सम्बन्धी कुछ महत्त्वपूर्ण सूत्रों का सङ्कलन, भट्टोजिदीक्षित की वृत्ति एवं हिन्दी-व्याख्या का साथ इस ग्रन्थ के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

प्रस्तुत प्रणयन

यह ग्रन्थ आठ प्रकाशों में विभक्त हैं, जिनमें स्वरों का सामान्य विचार, एवं धातु के स्वर का, व्युत्पन्नप्रातिपदिक के स्वर का, अव्युत्पन्नप्रातिपदिक के स्वर का,

---

१. उदात्ते निषादगान्धारावनुदात्ते ऋषभधैवतौ।
स्वरितप्रभवा ह्येते षड्जमध्यमपञ्चमाः॥ (पा० शि० १२)।

२. पा० सू० १।३।११।

सम्बोधन पद के स्वर का, प्रत्यय के स्वर का, समास के स्वर का तथा तिङन्त पद से सम्बन्धित स्वर के विचार संगृहीत हैं। अन्त में परिशिष्ट है जिसमें मन्त्रस्वरसञ्चार, सूत्रानुक्रमणी एवं वार्तिकानुक्रमणी का सङ्कलन है।

उपर्युक्त स्वर सम्बन्धी विचारों के विश्लेषण में क्रमशः पाणिनीयसूत्र भट्टोजि-दीक्षित की वृत्ति, सूत्र एवं वृत्ति का हिन्दी में अनुवाद तथा टिप्पणी में उदाहरणगत पदों की अपेक्षित सिद्धि के साथ स्वरसञ्चार एवं अन्य आवश्यक निर्देश प्रस्तुत किये गये हैं। पाद टिप्पणी में उदाहरणों के सन्दर्भ, उनके अर्थ तथा सूत्रों के सन्दर्भ एवं अन्य अपेक्षित निर्देश हैं।

इस प्रकार प्रणीत यह प्रथम ग्रन्थ प्रसून विद्वानों के करकमलों में अर्पित कर अपने को कृतकृत्य मानता हूँ और आशान्वित हूं कि यह स्वरजिज्ञासु जनों के लिये उपयोगी होगा।

आभार-प्रकाश

इस ग्रन्थ के साकार होने में उद्बोधन का पूर्णश्रेय परमादरणीय डॉक्टर श्री अमरनाथ पाण्डेय जी, एम. ए., डी. फिल्, अध्यक्ष, संस्कृत–विभाग, काशी विद्यापीठ वाराणसी–२, को है। उन्हीं के सत्प्रेरणामय प्रोत्साहन ने मुझे इस ओर प्रवृत्त किया और फलस्वरूप इस ग्रन्थ का प्रणयन सम्पन्न हुआ। इसके साथ ही उन्होंने इस ग्रन्थ के लिये आशीर्वचन लिखकर मुझे अनुगृहीत किया है। अतः इस अहैतुक कृपा प्रसाद के लिये मैं उनके प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ।

श्रद्धेय पूज्य पितृचरण पण्डित श्री शिवकुमार मिश्रजी से इस सम्बन्ध में अनेक बहुमूल्य सुझाव प्राप्त हुये हैं। उनके प्रति भी मैं अपनी हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापन करता हूँ।

अभिन्न स्नेहास्पद श्री कुञ्जविहारी पाण्डेय, एम. ए., साहित्याचार्य ने इस ग्रन्थ के प्रणयन एवं पाण्डुलिपि तैयार करने में अपने अध्ययनकालीन व्यस्त समय में भी तत्परता से अनवरत कार्य किया जिससे अत्यल्प समय में ही यह ग्रन्थ पूरा हो सका। तदर्थ आशीर्वाद पूर्वक इनके मङ्गलमय उज्ज्वल भविष्य की कामना करता हूँ। श्री राजेश कुमार शर्मा, व्यवस्थापक, स्वस्तिक मुद्रणालय वाराणसी, भी धन्यवाद के पात्र हैं, जिन्होंने स्वर आदि चिह्नों से भरपूर एवं मुद्रण की दृष्टि से कठिन इस ग्रन्थ को मुद्रित किया।

अन्ततः स्खलन मानव स्वभाव है। प्रथम प्रयास होने के कारण इस ग्रन्थ में यत्र तत्र अनेक त्रुटियाँ सम्भावित हैं। उनके लिये मैं क्षमा प्रार्थी हूँ।

विनीत—

वामदेव मिश्र

कार्तिक कृष्ण दीपावली २०३१

संस्कृत-विभाग

काशी विद्यापीठ, वाराणसी–२

—:०:—

स्वरप्राक्रिया प्रकाश

मङ्गलाचरण

वागीशाद्याः सुमनसः सर्वार्थानामुपक्रमे।
यन्नत्वा कृतकृत्याः स्युस्तन्नमामि गजाननम् ॥ १ ॥[1]

ब्रह्मा आदि देवता समस्त कार्यों के प्रारम्भ में जिनको नमस्कार करके कृतकृत्य हुए, उन गजानन को मैं नमस्कार करता हूँ।

स्वरपरिचय

स्वर उच्चः स्वरो नीचः स्वरः स्वरित एव च।
स्वरप्रधानं त्रैस्वर्यं व्यञ्जनं तेन सस्वरम् ॥ २ ॥[2]

स्वर ही उदात्त, अनुदात्त एवं स्वरित होता है। त्रैस्वर्य प्रक्रिया में स्वर प्रधान है उससे ही व्यञ्जन स्वरयुक्त होता है।

प्रथम प्रकाश

स्वरों का सामान्य विचार

उदात्त संज्ञा

१. उच्चैरुदात्तः ।१।२।२९।

ताल्वादिषु सभागेषु स्थानेषूर्ध्वभागे निष्पन्नोऽजुदात्तसंज्ञः स्यात्। आये।[3]

उच्चै—ऊँचे स्थानों में प्राप्त होने वाले अच् की उदात्त संज्ञा होती है।

ताल्वा—तीन भागों वाले तालु आदि स्थानों में ऊपरी भाग से उच्चारण किये जाने वाले अच् की उदात्त संज्ञा होती है; जैसे—'आये' [4क]।

---

१. ऋ. भा. भू. मङ्गलाचरण।
२. या. शि., वर्ण प्रकरण २। २६।
३. ऋ. सं० १। १६६। ४।
४. 'पूर्णतया जो—'।

टि० (क) इस उदाहरण के दोनों अचों का उदात्त स्वर है।

अनुदात्त संज्ञा

२. नीचैरनुदात्तः ।१।२।३०।

ताल्वादिषु सभागेष्वधोभागे निष्पन्नोऽजनुदात्तसंज्ञः स्यात्। 'अ॒र्वाङ्' ।[1]

नीचै—नीचे स्थानों में प्राप्त होने वाले अच् की अनुदात्त संज्ञा होती है।

ताल्वा—तीन भाग वाले तालु आदि स्थानों में नीचे के भाग से उच्चरित होने वाले अच् की अनुदात्त संज्ञा होती है; जैसे—'अ॒र्वाङ्' [२क]।

टि० (क) इस पद में अकार का अनुदात्त स्वर है।

स्वरित संज्ञा

३. समाहारः स्वरितः ।१।२।३१।

उदात्तानुदात्तत्वे वर्णधर्मौ समाह्रियेते यत्र सोऽच् स्वरितसंज्ञः स्यात्। 'क्व॑'[३] । 'क॒न्या॑'[४] ।

समा—उदात्त तथा अनुदात्त धर्मों के समाहार को स्वरित [क] कहते हैं।

उदा—अच् वर्णों के उदात्त तथा अनुदात्त धर्मों का समाहार जिस अच् में होता है; उस अच् की स्वरित संज्ञा होती है; जैसे—'क्व॑' [५ख] । 'क॒न्या॑' [६ख] ।

टि० (क) स्वरित के विविध प्रकार होते हैं।[७]

(ख) इन उदाहरणों में 'क्व॑' के अकार का तथा 'न्या॑' के आकार का स्वरित स्वर है। ये क्रमशः अपूर्व जात्यस्वरित तथा नीचपूर्व जात्यस्वरित के उदाहरण हैं।

---

१. ऋ. सं. । १ । १५७ । ३ ।
२. हम लोगों के अभिमुख—।
३. ऋ. सं. । ५ । ६१ । २ ।
४. ऋ. सं. । ४ । ५८ । ६ ।
५. 'कहाँ—' ।
६. 'लड़की—' ।
७. द्रष्टव्य-भूमिका ।

स्वरितस्वर का विश्लेषण

४. तस्यादित उदात्तमर्धंह्रस्वम् ।१।२।३२।

ह्रस्वग्रहणमतन्त्रम् । स्वरितस्यादितोऽर्धमुदात्तं बोध्यम् । उत्तरार्द्धं तु परिशेषादनुदात्तम् । तस्य च उदात्तस्वरितपरत्वे श्रवणं स्पष्टम् । अन्यत्र तूदात्तश्रुतिः प्रातिशाख्ये प्रसिद्धा । 'क्व '१ वोऽश्वाः'[1] । 'रथानां न ये '१ राः'[2] । 'शतचक्रं यो'३ ह्यः'[3] । इत्यादिष्वनुदात्तः । 'अग्निमी'ळे—'[4] इत्यादावुदात्तश्रुतिः ।

तस्या—उस स्वरित स्वर वाले अच् के प्रारम्भ का आधा ह्रस्व भाग उदात्त होता है ।

ह्रस्व—इस सूत्र में 'ह्रस्व' शब्द का ग्रहण अनावश्यक है । स्वरित स्वर वाले अच् के आदि का आधा भाग उदात्त जानना चाहिये और अवशिष्ट भाग शेष होने के कारण अनुदात्त होता है । उस अनुदात्त स्वर वाले भाग को बाद में उदात्त या स्वरित रहने पर साफ-साफ सुना जाता है ।

अन्यत्र याने उक्त अनुदात्त स्वर के बाद उदात्त या स्वरित स्वर न रहने पर अनुदात्त स्वर की उदात्तश्रुति होती है—यह बात प्रातिशाख्य में प्रसिद्ध है । 'क्व '१ वो—[5क] । '—ये '१ राः[6क]' तथा '—यो'३ ह्यः[7क]' इन स्थलों में स्वरित स्वर के बाद वाले आधे हिस्से की अनुदात्तश्रुति होती है किन्तु 'अग्नि-मी'ळे[8ख]—' इत्यादि वाक्य में 'मी' के स्वरित ईकार के बाद वाले भाग की उदात्त श्रुति होती है ।

टि० (क) इन उदाहरणों में उत्तरार्द्ध की अनुदात्तश्रुति है ।

(ख) इस उदाहरण में 'मी' के ईकार के उत्तरार्द्ध की उदात्तश्रुति है ।

---

१. ऋ. सं । ५ । ६१ । २ ।
२. ऋ. सं. । १० । ७८ । ४ ।
३. ऋ. सं. । १० । १४४ । ४ ।
४. ऋ. सं. । १ । १ । १ ।
५. तुम्हारे घोड़े कहाँ हैं ?
६. 'जो रथों के अरों के समान हैं—'।
७. अहि नामक असुर के अनन्त कार्य सम्पादक धन को—।
८. [मैं] अग्नि की स्तुति करता हूँ ।

स्वरविधि की परिभाषा

५. अनुदात्तं पदमेकवर्जम् । ६ । १ । १५८ ।

परिभाषेयं स्वरविधिविषया। यस्मिन् पदे यस्योदात्तः स्वरितो वा विधीयते तमेकमचं वर्जयित्वा शेषं तत्पदमनुदात्ताच्कं स्यात्। 'गोपायतं नः'[1]। अत्र सनाद्यन्ता इति धातुत्वे धातुस्वरेण यकाराऽकार उदात्तः शिष्टमनुदात्तम्।

अनु—(जिस किसी पद में जिस अच् को उदात्त या स्वरित स्वर का विधान किया जाता है, उस) एक अच् को छोड़कर (वह) पद अनुदात्त अचों वाला हो जाता है।

परि—यह सूत्र स्वर की विधि से सम्बन्धित परिभाषा है। जिस किसी पद में जिस अच् को उदात्त या स्वरित का विधान किया जाता है, उस एक अच् को छोड़कर वह शेष पद अनुदात्त अचों वाला हो जाता है; जैसे—'गोपाय-तंम्क'[2]। इस उदाहरण में 'सनाद्यन्ता धातवः'[3] सूत्र से 'गोपाय' की धातुसंज्ञा होने पर 'धातु के अन्त्य अच् का उदात्त स्वर होता है'[4] इस (धातु स्वर) नियम से 'य' के अकार का उदात्त स्वर होता है।

टि० (क) इस उदाहरण में 'गोपाय' शब्द में अनेक उदात्त स्वरों का विधान होता है, इनमें किसका लोप हो, इसका विचार सतिशिष्ट नियम के अनुसार किया जाता है।

सतिशिष्ट स्वर का नियम

सतिशिष्टस्वरबलीयस्त्वमन्यत्र विकरणेभ्य इति वाच्यम्। वा० । ३७३०।

तेनोक्तोदाहरणे गुपेर्धातुस्वर, आयस्य प्रत्ययस्वरश्च न शिष्यते। अन्यत्रेति किम्? 'यज्ञं यज्ञमभिवृधे गृणीतः'[5]। अत्र सतिशिष्टोऽपि श्ना इत्यस्य स्वरो न शिष्यते किन्तु तस एव।

---

१. ऋ. सं. । ६ । ७४ । ४ ।
२. 'हमारी रक्षा कीजिये—'
३. पा. सू. । ३ । १ । ३२ ।
४. पा. सू. । ६ । १ । १६२ ।
५. ऋ० सं० । ३ । ६ । १० ।

सति—प्रकृति तथा प्रत्यय के बीच होनेवाले (विकरण) प्रत्यय के स्वर को छोड़कर सतिशिष्ट स्वर क बलवान् होता है।

इस नियम से प्रस्तुत उदाहरण 'गुप्' धातु के उकार का धातु होने के कारण प्राप्त उदात्त स्वर और 'प्रत्यय के आदि अच् का उदात्त स्वर होता है'[१] इस प्रत्यय स्वर के नियम से 'आय' प्रत्यय के आकार का प्राप्त उदात्त स्वर नहीं रहते हैं।ख

'गुप्' धातु और 'आय' प्रत्यय को मिलाकर बने हुये नये धातु 'गोपाय' के 'य' के अकार का धातु होने के कारण विहित उदात्त स्वर (धातु स्वर) शेष रहता है।

'सतिशिष्ट'—वार्त्तिक में 'अन्यत्रविकरणेभ्य: पद का ग्रहण क्यों किया गया है ? इस पद का ग्रहण विकरण प्रत्यय 'ना'[२] (=णी) के उदात्त स्वर निषेध के लिये है, जैसे—'गृणीतः'[३] ग इस पद में सतिशिष्ट होने पर भी 'श्ना' के आकार का उदात्त स्वर नहीं रहता बल्कि 'तस्' प्रत्यय का ही स्वर शेष रहता है।

टि० (क) एक उदात्त या स्वरित के रहते दूसरे विहित होने वाले उदात्त या स्वरित स्वर को सतिशिष्ट स्वर कहते हैं।

(ख) गोपायतम्—√ 'गुपू' (गुप्) रक्षणे[४] धातु से 'गुपूधुप—' सूत्र से स्वार्थ में 'आय' प्रत्यय होता है (गुप् + आय)। 'पुगन्तलघूपधस्य च' सूत्र से 'गु' के 'उ'कार को 'ओ' गुण होकर (गोप् + आय) 'गोपाय' शब्द बनता है।

'सनाद्यन्ता धातवः' सूत्र से 'गोपाय' की पुनः धातु संज्ञा होती है और 'लोट् च' सूत्र से 'लोट्' (ल्) प्रत्यय होता है (गोपाय + ल्)। 'तिप्तस्झि'—सूत्र से 'ल्' के स्थान में 'थस्' प्रत्यय का आदेश होता है (गोपाय + थस्)। 'तस्थस्थ—' सूत्र से 'थस्' प्रत्यय के स्थान पर 'तम्' प्रत्यय होता है (गोपाय + तम्)। 'तिङ्शित्—' सूत्र से 'तम्' की सार्वधातुक संज्ञा होती है और 'कर्तरि शप्' सूत्र से 'शप्' (अ) विकरण प्रत्यय होता है। 'अतो गुणे' सूत्र से

---

१. पा० सू० । ३ । १ । ३ ।
२. पा० सू० । ३ । १ । ८१ ।
३. 'प्रत्येक यज्ञ में समृद्धि के लिये (अग्नि) की स्तुति करते हो—'
४. भ्वा० प० से० । ९९५ ।

'गोपाय' के 'य' के अकार का 'शप्' के अकार के साथ पररूप एकादेश होकर प्रकृति प्रत्यय मिलाने से 'गोपायतम्' पद सिद्ध होता है।

स्वर सञ्चार—'धातोः' सूत्र से 'गुप्' धातु के उकार का उदात्त स्वर है। 'आद्युदात्तश्च' सूत्र से 'आय' प्रत्यय के आकार का उदात्त स्वर होता है। 'गोपाय'-शब्द की पुनः धातु संज्ञा होने के कारण पुनः 'धातोः' सूत्र से 'य' के अकार का उदात्त स्वर होता है। 'अनुदात्तं पदमेकवर्जम्' सूत्र के द्वारा सतिशिष्ट नियम के अनुसार 'य' का अकार बाद में उदात्तत्व विहित होने के कारण बलवान् है। अतः उसका उदात्त स्वर रहता है और अन्य अचों का उदात्त स्वर अनुदात्त स्वर के रूप में बदल जाता है। 'अनुदात्तौ सुप्पितौ' सूत्र में 'शप्' (अ) विकरण प्रत्यय का अनुदात्त स्वर होता है। इस अनुदात्त अकार का 'य' के उदात्त अकार के साथ पररूप एकादेश होने के कारण 'एकादेश उदात्तेनोदात्तः' सूत्र से 'य' के अकार का उदात्त स्वर होता है। 'तास्यनु—'सूत्र से 'तम्' प्रत्यय के अकार का अनुदात्त स्वर होता है। इस प्रकार 'गोपायतम्' पद में 'य' के आकार को छोड़कर अन्य सभी अचों का अनुदात्त स्वर होता है। इसके बाद 'उदात्तादनु–' सूत्र से 'त' के अकार का स्वरित स्वर होता है।

(ग) 'गृणीतः'—√'गृ' शब्दे[1] धातु से 'वर्त्तमाने लट्' सूत्र के द्वारा लट् (ल्) प्रत्यय होता है (गृ + ल्)। 'तिप्तस्झि-' सूत्र से 'ल्' के स्थान पर 'तस्' प्रत्यय का आदेश होता है (गृ + तस्)। 'तिङ्शित्–' सूत्र से 'तस्' की सार्वधातुक संज्ञा होती है और 'कर्तरि शप्' सूत्र से विकरण प्रत्यय प्राप्त होता है किन्तु 'क्र्यादिभ्यः श्ना' सूत्र से उसे बाधकर 'श्ना' (ना) प्रत्यय होता है (गृ + ना + तस्)। 'ई हल्यघोः' सूत्र से 'ना' के आकार को दीर्घ ईकार होता है (गृ + नी + तस्)। 'ऋवर्णान्नस्य णत्वं वाच्यम्' वार्त्तिक से 'न' को 'ण' होता है (गृ + णी + तस्) तथा 'स्' को रुत्वविसर्ग होकर 'गृणीतः' पद सिद्ध होता है।

स्वर सञ्चार—'धातोः' सूत्र से 'गृ' धातु के ऋकार का उदात्तस्वर होता है। 'आद्युदात्तश्च' सूत्र से 'तस्' प्रत्यय के

१. क्र्या० प० से०। १४९८।

अकार का तथा 'श्ना' विकरण प्रत्यय के आकार का उदात्त स्वर होता है।

यहाँ 'अनुदात्तं पदम्–' सूत्र की सहायता से सतिशिष्ट नियम के द्वारा 'श्ना' विकरण प्रत्यय के उदात्त स्वर शेष रहने की बात आती है किन्तु स्वर की दृष्टि से यह अनिष्ट है। अतः विकरण प्रत्यय से भिन्न प्रत्यय का उदात्त स्वर शेष रखने के लिये 'सतिशिष्ट-' वार्त्तिक में 'अन्यत्रविकरेणभ्यः' पद का ग्रहण किया गया है। 'गृ॒णी॒तः' पद में विकरण प्रत्यय से भिन्न 'तस्' प्रत्यय के अकार का प्रत्यय स्वर से उदात्त स्वर होता है।

आश्रित स्वरित स्वर

६. उदात्तादनुदात्तस्य स्वरितः।८।४।६६।

उदात्तात्परस्यानुदात्तस्य स्वरितः स्यात्। 'अ॒ग्निमी॑ळे–'[१]। अस्याऽसिद्धत्वाच्छेषनिधातो न। तमी॑शा॒नासः[२]।

उदा—उदात्त के बाद अनुदात्त का स्वरित होता है।

उदा—उदात्तस्वर के बाद वर्त्तमान अनुदात्त स्वर का स्वरित स्वर होता है; जैसे—'अ॒ग्निमी॑ळे[३]–'।

'उदात्तादनु–' सूत्र त्रैपादिक ख है। इसके द्वारा विधान किया गया स्वरित स्वर अष्टाध्यायी में प्रारम्भिक सवा सात अध्याय के अन्तर्गत पठित 'अनुदात्तं पदम्–' सूत्र की दृष्टि में असिद्ध है। अतः इस स्वरित विधान से पूर्व विहित 'ग्नि' के उदात्त इकार का निघातस्वर नहीं होता है।

इसी प्रकार तमी॑शा॒नासः[४ग] पद में भी स्वर का विधान होता है।

टि० (क) इस उदाहरण में ग्नि के इकार का उदात्त स्वर है और ईळे के ईकार का अनुदात्त स्वर है। 'उदात्तादनु–' सूत्र से उदात्त इकार के बाद वर्तमान अनुदात्त ईकार का स्वरित स्वर होता है।

---

१. ऋ० सं०। १। १। १।
२. ऋ० सं०। १। १२९। २।
३. 'अग्नि की स्तुति करता हूँ—'
४. 'अच्छी तरह स्तुति करने में समर्थ—'

(ख) पाणिनीय व्याकरण के सूत्रों का सङ्कलन अष्टाध्यायी याने आठ अध्यायों के रूप में है। इसके प्रत्येक अध्याय में चार-चार पाद हैं। इस प्रकार कुल आठों अध्यायों में वत्तीस पाद हैं। इनमें से प्रथम सात अध्याय तथा आठवें अध्याय के प्रथम पाद को एकत्र 'सपादसप्ताध्यायी' कहते हैं। बाद वाले तीन पाद को 'त्रिपादी' कहते हैं।

सपादसप्ताध्यायी के प्रति त्रिपादी के नियम से किये गये कार्य असिद्ध होते हैं और त्रिपादी में भी पूर्व के प्रति पर असिद्ध होता है।[1]

(ग) इस उदाहरण में 'तम्' के अकार का उदात्त स्वर है और 'ई' तथा 'शा' के अचों का अनुदात्त स्वर है। यहाँ भी 'उदात्तादनु–' सूत्र से 'त' के उदात्त अकार के बाद वर्त्तमान अनुदात्त 'ई' का स्वरित स्वर होता है।

आश्रित स्वरित स्वर का निषेध

७. नोदात्तस्वरितोदयमगार्ग्यकाश्यपगालवानाम् ।८।४।६७।

उदात्तपरः स्वरितपरश्चानुदात्तः स्वरितो न स्यात्। गार्ग्यादिमते तु स्यादेव। 'प्र य आरुः'[2] । 'वोऽश्वाः क्वा ३ भीशवः'[3] ।

नोदात्त—गार्ग्य, काश्यप तथा गालव आचार्यों को छोड़कर अन्य आचार्यों के मत से (उदात्त के बाद वर्तमान अनुदात्त स्वर का), उसके बाद उदात्त या स्वरित स्वर रहते, (स्वरित स्वर नहीं होता है।)

उदात्त—उदात्त या स्वरित स्वर परे रहते अनुदात्त का स्वरित नहीं होता है। गार्ग्य आदि आचार्यों के मत से तो उपर्युक्त स्थिति में स्वरित होता है; जैसे—उदात्त पर का—'प्र य आरुः'[४क]। स्वरित पर का—'वोऽश्वाः क्वा ३ भीशवः'[५ख]।

टि० (क) इस उदाहरण में 'य' के अकार का उदात्त स्वर और आकार का अनुदात्त स्वर है। यहाँ 'उदात्तादनु—' सूत्र से अनुदात्त आकार का

---

१. पा० सू० । ८ । २ । १ ।
२. ऋ० सं० । ३ । ३७ । १ ।
३. ऋ० सं० । ५ । ६१ । २ ।
४. 'जो (अग्नि की किरणें) वेग से ऊपर उठती है।
५. हे मरुद्गण, आपके घोड़े कहाँ हैं, उसको बाँधने की रस्सी कहाँ है।

स्वरित स्वर प्राप्त है। उसका 'नोदात्त—' सूत्र से 'रु' के उदात्त उकार परे रहते निषेध होता है। अतः अनुदात्त आकार का स्वर परिवर्तित नहीं होता है।

(ख) इस उदाहरण में 'वो' के ओकार का उदात्त स्वर, 'श्वाः' के आकार का अनुदात्त स्वर तथा 'क्वा' के आकार का अनाश्रित जात्य-स्वरित स्वर है। यहाँ 'श्वाः' के अनुदात्त आकार का 'उदात्तादनु—' सूत्र से स्वरित स्वर प्राप्त है; उसका भी 'नोदात्त—' सूत्र से निषेध होता है। अतः 'श्वाः' के आकार का अनुदात्त स्वर ही रहता है।

एकश्रुति स्वर

८. स्वरितात्संहितायामनुदात्तानाम् । १ । २ । ३९ ।

स्वरितात्परेषामनुदात्तानां संहितायामेकश्रुतिः स्यात् । 'इमं मे गङ्गे यमुने सरस्वति'[1] ।

स्वरि—संहिता में स्वरित के बाद अनुदात्तों का एकश्रुति स्वर होता है।

स्वरितात्—स्वरित के बाद वर्त्तमान एक या एक से अधिक अनुदात्त का संहिता में एकश्रुति स्वर होता है; जैसे—'मे गङ्गे यमुने सरस्वति'[2क] ।

टि० (क) इस उदाहरण में 'मे' के एकार का स्वरित स्वर है और उसके बाद वर्त्तमान 'गङ्गे', 'यमुने' तथा 'सरस्वति' का सम्बोधन होने के कारण सर्वानुदात्त स्वर है किन्तु संहिता पाठ में 'स्वरितात्—' सूत्र से उपर्युक्त तीनों सर्वानुदात्त स्वर वाले पदों का एकश्रुति स्वर होता है।

(ख) 'उदात्तश्रुति' तथा 'प्रचय' ये 'एकश्रुति' के पर्याय हैं।

अनुदात्ततर स्वर

९. उदात्तस्वरितपरस्य सन्नतरः । १ । २ । ४० ।

उदात्तस्वरितौ परौ यस्मात्तस्याऽनुदात्तस्यानुदात्ततरः स्यात्। 'सरस्वति शुतुद्रि—'[3] । 'व्यचक्षयत्स्वः'[4] ।

---

१. ऋ० सं० । १० । ७५ । ५ ।
२. 'हे गंगा, यमुना, सरस्वती (नदियों) इस मेरे—' ।
३. ऋ० सं० । १० । ७५ । ५ ।
४. ऋ० सं० । २ । २४ । ३ ।

उदा—उदात्त या स्वरित स्वर के बाद में वर्त्तमान रहते उससे पूर्ववर्त्ती अनुदात्त स्वर का अनुदात्ततर स्वर होता है।

उदात्तस्वरितौ—जिस अनुदात्त के बाद उदात्त या स्वरित स्वर रहता है उसका अनुदात्ततर स्वर होता है; जैसे—'सरस्वति शुतुद्रि'[१]क। 'व्यचक्षयत् स्वः'[२]ख।

टि० (क) इस उदाहरण में 'सरस्वति' तथा 'शुतुद्रि' दोनों ही सम्बोधन (आमन्त्रित)[३] पद हैं। 'सरस्वति' पद पहले पाद का अन्तिम पद है तथा 'शुतुद्रि' पद दूसरे पाद का प्रारम्भिक पद है।

सामान्यतया 'किसी पद के बाद वर्त्तमान सम्बोधन पद का सर्वानुदात्त स्वर होता है, और 'पाद के आदि में वर्त्तमान सम्बोधन पद का आदि उदात्त स्वर होता है, इन नियमों से 'सरस्वति' पद का सर्वानुदात्त स्वर है तथा 'शुतुद्रि' पद का आद्युदात्त ('शु' के उकार का उदात्त) स्वर है। यहाँ 'शु' के उकार के परे रहते 'ति' के अनुदात्त इकार का 'उदात्तस्वरित—' सूत्र से अनुदात्ततर स्वर होता है।

(ख) इस उदाहरण में 'अचक्षयत्' क्रिया पद है और 'स्वः' संज्ञापद है। 'सामान्यतया तिङन्त क्रिया पद का अतिङन्त क्रिया पद के बाद रहने पर सर्वानुदात्त स्वर होता है'[४]—इस नियम से 'अचक्षयत्' पद का सर्वानुदात्त स्वर होता है और 'स्वः' पद के अकार का निपातन से स्वरित स्वर है। यहाँ स्वरित स्वर वाले 'स्व' परे रहते 'य' के अनुदात्त अकार का भी पूर्ववत् अनुदात्तर स्वर होता है।

सन्धिज उदात्तस्वर

१०. एकादेश उदात्तेनोदात्तः। ८। २। ५।

उदात्तेन सहैकादेश उदात्तः स्यात्। 'क्व १ वोऽश्वाः'[५]। 'क्वावरं मरुतः'[६]।

---

१. 'हे सरस्वति शुतुद्रि!'

२. 'स्वर्ग (के विषय में) कहा—'।

३ द्रष्टव्य—'सम्बोधन पद के स्वर का विचार'।

४. पा० सू०। ८। १। २८।

५. ऋ० सं०। ५। ६१। २।

६. ऋ० सं०। १। १६८। ६।

एका—उदात्त स्वर के साथ एकादेश उदात्त होता है।

उदात्तेन—उदात्त स्वर के साथ (किसी भी स्वर का) एकादेश (होने पर आदेशभूत अच् का) उदात्त स्वर होता है; जैसे—'वोऽश्वा:'[१क]। 'क्वावं—'[२ख]।

टि० (क) 'व: + अश्वा: = वोऽश्वा:', यहाँ पर 'व' के अकार का 'अनुदात्तं सर्वं—' सूत्र से अनुदात्त स्वर है। 'ञ्नित्यादिर्नित्यम्' सूत्र से 'अश्वा:' पद के अकार का उदात्त स्वर है। अनुदात्त 'व' के अकार की 'अश्वा:' के अकार के साथ सन्धि होने के कारण 'एकादेश—' सूत्र से सन्धिज 'वो' के ओकार का उदात्त स्वर होता है।

(ख) 'क्व + अवरम् = क्वाऽवरम्'। यहाँ 'क्व' के अकार का 'तित्स्वरितम्' सूत्र से स्वरित स्वर है, और 'अवर' शब्द के प्रथम अकार का 'स्वाङ्गशिटाम्—' सूत्र से उदात्त स्वर है। 'क्व' के स्वरित अकार के साथ 'अवरम्' के उदात्त अकार का एकीभाव होने के कारण 'एकादेश—' सूत्र से 'क्वा' के आकार का उदात्त स्वर होता है।

यण् सन्धिज् अनाश्रित स्वरित स्वर

११. उदात्तस्वरितयोर्यण: स्वरितोऽनुदात्तस्य। ८। २। ४।

उदात्तस्थाने स्वरितस्थाने च यो यण् तत: परस्यानुदात्तस्य स्वरित: स्यात्। (उदात्तस्य यण:) 'अभ्यंभि हि'[३]। स्वरितस्य यण:—'खलप्व्या'शा'। अस्य स्वरितस्य त्रैपादिकत्वेनासिद्धत्वाच्छेषनिघातो न।

उदा—उदात्त या स्वरित स्वर का यण् होने पर अनुदात्त का स्वरित स्वर होता है।

उदात्तस्था—उदात्त के स्थान में और स्वरित के स्थान में जो यण् होता है, उससे परवर्ती अनुदात्त का स्वरित स्वर होता है; जैसे—उदात्त का यण् होने पर—'अभ्यंभि—'[४क]। स्वरित का यण् होने पर—'खलप्व्या'शा'[५ख]। इस स्वरित स्वर के त्रैपादिक होने से असिद्ध होने के कारण शेष ('शा' के उदात्त आकार) का निघात स्वर नहीं होता है।

१. 'तुम्हारे घोड़े कहाँ है ?'
२. 'हे मरुद्गण ! (उस जल का) आदि तथा अन्त कहाँ है ?'
३. ऋ० सं०। ६। ११०। ५।
४. 'बिलकुल सामने—'।
६. 'खलिहान साफ करने वाले की आशा—'।

टि० (क) 'अभ्यभि'—'अभि + अभि' = 'अभ्यभि' । यहाँ 'उपसर्गाश्चाभिवर्जम्' सूत्र से प्रथम 'अभि' पद का अन्तोदात्त स्वर है और बाद वाले 'अभि' पद का 'अनुदात्तं च' सूत्र से सर्वानुदात्त स्वर है। प्रथम 'अभि' के उदात्त इकार का यण् होने पर परवर्त्ती 'अभि' के अकार के अनुदात्त स्वर का 'उदात्तस्वरित—'सूत्र से स्वरित स्वर होता है।

(ख) 'खलप्व्याशा'—'खलं पुनातीति खलपूः + ङि = खलप्वि', 'खलप्वि + आशा = 'खलप्व्याशा'। यहाँ 'गतिकारकोपपदात् कृत्' सूत्र से 'पू' के ऊकार का उदात्त स्वर है। 'अनुदात्तौ सुप्पितौ' सूत्र से 'ङि' के इकार का अनुदात्त स्वर है। इस प्रकार निष्पन्न 'खलप्वि' शब्द में हल् पूर्वक उदात्त यण् होने के कारण 'उदात्तयणो हल्पूर्वात्' सूत्र से विभक्ति प्रत्यय के इकार का उदात्त स्वर प्राप्त है, किन्तु 'पू' धातु के ऊङन्त होने के कारण 'नोङधात्वोः' सूत्र से उसका निषेध होता है। 'पू' के उदात्त ऊकार को यण् होने के कारण उसके बाद वर्त्तमान इकार का 'उदात्तस्वरित—' सूत्र से स्वरित स्वर होता है।

'खलप्वि + आशा' इस स्थिति में 'आशा' शब्द का 'आशाया दिगाख्याचेत्' सूत्र से अन्तोदात्त स्वर है, जिससे परिशेषात् प्रथम आकार का अनुदात्त स्वर है। 'खलप्वि' के स्वरित इकार का यण् होने के कारण उसके बाद वर्त्तमान 'आशा' पद के अनुदात्त आकार का पुनः 'उदात्तस्वरितयोः—' सूत्र से स्वरित स्वर होता है, जिससे 'प्व्या' का आकार स्वरित है।

यण् से भिन्न सन्धिज अनाश्रित स्वरित स्वर

१२. स्वरितो वाऽनुदात्ते पदादौ । ८ । २ । ६ ।

अनुदात्ते पदादौ परे उदात्तेन सहैकादेशः स्वरितो वा स्यात् । पक्षे पूर्वसूत्रेणोदात्तः । 'वी ३ दं ज्योतिर्हृदये'[१] । 'अस्य श्लोको दिवीयते'[२] । व्यवस्थितविभाषात्वादिकारयोः स्वरितः । दीर्घप्रवेशे तूदात्तः । किं च

१. ऋ० सं० । ६ । ९ । ६ ।

२. ऋ० सं० । १ । १९० । ४ ।

'एङः पदान्तादति' इति पूर्वरूपे स्वरित एव। 'ते॑ऽवदन्'[१]। 'सो॒ ३॒ यमा-गांत्'[२]। उक्तञ्च प्रातिशाख्ये—'इकारयोश्च प्रश्लेषे क्षैप्राभिनिहितेषु चे'ति[३]।

स्वरि—पद के आदि में वर्तमान अनुदात्त परे रहते (उदात्त के साथ) एकीभाव विकल्प से स्वरित होता है।

अनु—अनुदात आदि वाले पद परे रहते पूर्ववर्ती उदात्त का एकीभाव होने पर विकल्प से स्वरित होता है। विकल्प पक्ष में 'एकादेश—' सूत्र से उदात्त स्वर होता है; जैसे—'वी॒ ३॒ दम्'[४क]। '—दि॒वीयं॑ते'[५ख]।

यहाँ पर व्यवस्थित विभाषा[ङ] है। अतः दो ह्रस्व इकारों का दीर्घ एकादेश होने पर उसका स्वरित स्वर होता है और दोनों में से कोई एक दीर्घ होने पर तो सन्धिज् अच् का उदात्त स्वर होता है, किन्तु 'एङः पदान्तादति' सूत्र से पूर्वरूप होने पर स्वरित स्वर होता है; जैसे—'ते॑ऽवदन्'[६ग]। 'सो॒ ३॒ यं'[७घ]।

ऋक्प्रातिशाख्य में भी कहा गया है कि दो ह्रस्व इकारों के प्रश्लेष (गुण, वृद्धि एवं दीर्घ), क्षैप्र (यण्) तथा अभिनिहित (पूर्वरूप) सन्धियों में (यदि पूर्व स्वर उदात्त और बाद का स्वर अनुदात्त हो तो शाकल्य आचार्य के मत से दोनों स्वरों का स्वरित एकादेश होता है)।

टि० (क) वि + इदम् = वी॒ ३ दम्। यहाँ पर 'वी' के ईकार का 'निपाता आद्युदात्ताः' सूत्र से उदात्त स्वर है और 'इदम्' के इकार का 'फिषोऽन्त उदात्तः' सूत्र से उदात्त स्वर है। दोनों का एकीभाव होने पर 'स्वरितो वा–' सूत्र से 'वी' के ईकार का स्वरित स्वर होता है।

(ख) दिवि + ईयते = दि॒वीयं॑ते। यहाँ 'ऊडिदं—' सूत्र से 'वि' के इकार का उदात्त स्वर है। 'तिङ्ङतिङः' सूत्र से 'ईयते' पद का सर्वानुदात्त स्वर होता है। उदात्त इकार का अनुदात्त ईकार के साथ एकीभाव होने पर 'एकादेश–' सूत्र से उदात्त स्वर होता है।

---

१. ऋ० सं० । १० । १०९ । १ ।
२. ऋ० सं० । १० । ५३ । १ ।
३. ऋ० प्रा० । ३ । १३ ।
४. 'विशेषकर हृदय में यह ज्योति—'।
५. 'इनका यश पृथ्वी तक स्वर्ग में व्याप्त है—'।
६. 'उन्होंने कहा'।
७. 'वह यह गया'।

(ग) तें + अवदन् = 'तें ऽवदन्'। यहाँ पर 'फिषोऽन्त—' सूत्र से 'तें' पद के एकार का उदात्त स्वर है। 'तिङ्ङतिङः' सूत्र से 'अवदन्' क्रियापद का निघात स्वर है। 'तें' के उदात्त एकार के साथ 'अवदन्' के अनुदात्त अकार की अभिनिहित (पूर्वरूप) सन्धि होने पर 'स्वरितो वा—' सूत्र से स्वरित स्वर होता है।

(घ) 'सो + अयम्' = 'सो ३ यम्'। यहाँ 'सो' के ओकार का तथा 'य' के अकार का 'फिषोऽन्त—' सूत्र से उदात्त स्वर है। उदात्त ओकार के साथ 'अयम्' के प्रारम्भिक अनुदात्त अकार का एकीभाव होने पर उत्पन्न 'सोऽ'के ओकार का 'स्वरितो वा—' सूत्र से स्वरित स्वर होता है।

(ङ) जो नियम अपने कुछ लक्ष्यों में लगता है और कुछ लक्ष्यों में नहीं लगता, परन्तु जहाँ लगता है वहाँ नित्य लगता है और जहाँ नहीं लगता है वहाँ नित्य नहीं लगता है उसे व्यवस्थित विभाषा कहते हैं।

उदात्तस्वर के लोप होने पर स्वर सञ्चार

१३. अनुदात्तस्य च यत्रोदात्तलोपः। ६। १। १६१।

यस्मिन्ननुदात्ते परे उदात्तो लुप्यते तस्योदात्तः स्यात्। 'देवीं वाचम्'[१]। अत्र ङीबुदात्तः।

अनु—जहाँ उदात्त का लोप होता है, वहाँ (परवर्ती) अनुदात्त का उदात्त हो जाता है।

यस्मिन्—जिस अनुदात्त के परे रहते उदात्त का लोप होता है, उस अनुदात्त का उदात्त हो जाता है; जैसे—'देवीम्'[२क]। यहाँ 'देवीम्', पद के 'ङीप्' प्रत्यय के ईकार का उदात्त स्वर है।

टि० (क) 'देवीम्'—'दिव् + अच्' (गुण) = 'देव'। पचादिगण में 'देवट्' ऐसा पाठ होने के कारण 'देव' शब्द टित् है। 'टिड्ढाणञ्—' सूत्र से

---

१. ऋ० सं० । ८ । १०० । ११ । तै० ब्रा० । २ । ४ । ६ । १० । तथा निरु० । ११ । २६ ।
२. 'देवों को स्तुति को—'।

'ङीप्' (ई) प्रत्यय होता है (देव + ई)। 'यचि भम्' सूत्र से 'व' के अकार की भसंज्ञा होती है और 'यस्येति च' सूत्र से उसका लोप होकर 'देवी' शब्द बनता है। द्वितीया एकवचन में विभक्ति कार्य करने से 'देवीम्' पद सिद्ध होता है।

यहाँ पर चित् प्रत्ययान्त 'देव' शब्द का 'चितः' सूत्र से अन्तोदात्त स्वर है। उससे विहित 'ङीप्' प्रत्यय के इकार का 'अनुदात्तौ सुप्पितौ' सूत्र से अनुदात्त स्वर है। अनुदात्त ईकार परे रहते 'देव' शब्द के उदात्त अकार का लोप होने के कारण 'अनुदात्तस्य च यत्रोदात्तलोपः' सूत्र से अनुदात्त ईकार का उदात्त स्वर होता है। इस प्रकार 'देवीम्' पद में 'वी' के ईकार का उदात्त स्वर है।

—: ० :—

द्वितीय प्रकाश

धातु के स्वर का विचार

धातु का सामान्य स्वर

१४. धातोः ।६।१।१६२।

अन्त उदात्तः स्यात् । 'गोपायतं नः–'[1] । 'असि सत्यः'–[2] ।

धातोः—धातु का अन्तोदात्त स्वर होता है ।

अन्त—धातु के अन्त अच् का उदात्त स्वर होता है; जैसे—'गोपायतम्-'[3क] । 'असि–'[4ख] ।

टि० (क) इस पद में 'य' के अकार का उदात्त स्वर हैं ।[5]

(ख) असि—√'अस्' भुवि धातु से 'वर्त्तमाने लट्' सूत्र के द्वारा 'लट्' (ल्) प्रत्यय होता है (अस् + ल्) । 'तिप्तस्झि–' सूत्र से 'ल्' के स्थान पर 'सिप्' (सि) आदेश होता है (अस् + सि) । 'तासस्त्योर्लोपः' सूत्र से 'अस्' के 'स्' का लोप होकर 'असि' पद सिद्ध होता है ।

स्वर सञ्चार—इस पद में 'धातोः' सूत्र से 'अस्' के अकार का उदात्त स्वर होता है । 'अनुदात्तौ सुप्पितौ' सूत्र से 'सि' के इकार का अनुदात्त स्वर है जिसका उदात्त अकार के बाद होने के कारण स्वरित स्वर हो जाता है ।

—: ० :—

१. ऋ० सं० । ६ । ७४ । ४ ।
२. ऋ० सं० । १ । ८७ । ४ ।
३. 'हमारी रक्षा कीजिये—' ।
४. 'सत्कर्मों के योग्य हो—' ।
५. द्रष्टव्य—'अनुदात्तं पदमेकवर्जम्' सूत्र की व्याख्या ।

तृतीय प्रकाश

व्युत्पन्न प्रातिपादिक के स्वर का विचार

षट् त्रि तथा चतुर शब्दों का स्वर

१५. झल्युपोत्तमम् ।६।१।१८०।

षट्त्रिचतुर्भ्यो या झलादिर्विभक्तिस्तदन्ते पदे उपोत्तममुदात्तं स्यात् । 'अध्वर्युभिः पञ्चभिः–'[१] । 'नवभिर्वाजैर्नवति च–'[२] । 'सप्तभ्यो जायमानः–'[३] । 'आ दशभिर्विवस्वतः–'[४] । उपोत्तमं किम् ? 'आ षड्भिर्हूयमानः'[५] । 'विश्वैर्देवैस्त्रिभिः–'[६] । झलि किम् ? 'नवानां नवतीनाम्'[७] ।।

झलि—झलादि विभक्ति प्रत्यय परे रहते षट्, त्रि तथा चतुर शब्दों के अन्तिम अच् से पूर्व अच् का उदात्त स्वर होता है ।

षट्त्रि—षट् त्रि तथा चतुर शब्द से विहित जो झलादि विभक्ति प्रत्यय तदन्त पद में उपोत्तम अच् का उदात्त स्वर होता है; जैसे—'–पञ्चभिः'[८क] । 'नवभिः–'[९ख] । 'सप्तभ्यो–'[१०ख] । '–दशभिः–'[११ख] ।

प्रस्तुत सूत्र में 'उपोत्तमम्' पद का ग्रहण क्यों किया गया है ? इस पद का ग्रहण अन्तोदात्त स्वर के निषेध के लिये है; जैसे–'-षड्भिः-'[१२ग] । '-त्रिभिः-'[१३ग] ।

---

१. ऋ० सं० । ३ । ७ । ७ ।
२. ऋ० सं० । १० । ३९ । १० ।
३. ऋ० सं० । ८ । ९६ । १६ ।
४. ऋ० सं० । ८ । ७२ । ८ ।
५. ऋ० सं० । २ । १८ । ४ ।
६. ऋ० सं० । ८ । ३५ । ३ ।
७. ऋ० सं० । १ । १९१ । १३ ।
८. 'पाँच अध्वर्युओं के साथ—' ।
९. 'निन्यानवे घोड़ों के साथ— '।
१०. '(हे इन्द्र !) उत्पन्न होते ही सातों के लिये—' ।
११. 'दसो (अंगुलियों) से प्रार्थना करने पर—' ।
१२. 'बुलाये जाने पर छहों के साथ—' ।
१३. '(तुम) तीन विश्व देवों के साथ—' ।

प्रस्तुत सूत्र में 'झलि' पद का ग्रहण क्यों किया गया है ? इस पद का ग्रहण झलादि विभक्ति प्रत्यय[घ] से भिन्न विभक्ति प्रत्यय वाले पद के उपोत्तम अच् के निषेध के लिये है; जैसे—'नवानां–'[1ङ] ।

टि० (क) पञ्चभिः—'पञ्चन्' शब्द से प्रातिपदिक संज्ञा करके 'स्वौजसमौट्—' सूत्र से 'भिस्' विभक्ति प्रत्यय होता है तथा 'नलोपः—' सूत्र से 'न्' का लोप होकर प्रकृति प्रत्यय मिलाकर 'स्' का रुत्व विसर्ग करने से 'पञ्चभिः' पद सिद्ध होता है ।

स्वर सञ्चार—'ञ्नित्यादिर्नित्यम्' सूत्र से 'कनिन्' प्रत्ययान्त 'पञ्चन्' शब्द का आदि उदात्त स्वर है और 'अनुदात्तौ सुप्पितौ' सूत्र से 'भिस्' विभक्ति प्रत्यय का अनुदात्त स्वर है । इस प्रकार 'पञ्चभिः' पद में 'प' के अकार का उदात्त स्वर प्राप्त है । 'झल्युपोत्तमम्' सूत्र से उसको बाधकर 'च' के अकार उदात्त स्वर होता है ।

(ख) नवभिः, सप्तभ्यः तथा दशभिः पदों में भी पूर्ववत् क्रमशः व, प्त तथा श के अकारों का उदात्त स्वर होता है ।

(ग) षड्भिः त्रिभिः—इन पदों में 'फिषोऽन्त—' 'सूत्र' से 'षट्' तथा 'त्रि' शब्दों का अन्तोदात्त स्वर है और 'अनुदात्तौ सुप्पितौ' सूत्र से 'भिस्' विभक्ति प्रत्यय का अनुदात्त स्वर है । इस प्रकार दोनों पदों में क्रमशः 'ष' के अकार का तथा 'त्रि' के इकार का उदात्त स्वर प्राप्त है, उसको बाधकर 'षट्त्रि—' सूत्र से विभक्ति प्रत्यय का उदात्त स्वर होता है।

(घ) झलादि विभक्ति प्रत्यय—भ्याम्, भिस् तथा भ्यस् प्रत्ययों को झलादि प्रत्यय कहते हैं ।

(ङ) नवानाम्—'नवन्' शब्द से प्रातिपदिक संज्ञा करके 'स्वौजसमौट्—' सूत्र में 'आम्' विभक्ति प्रत्यय होता है (नवन् + आम्) । 'षट्त्रि—' सूत्र से 'नुट्' (न) का आगम होता है (नवन् + न् + आम्)। 'नोपधायाः' सूत्र से 'व' के अकार को दीर्घ होता है (नवान् + न् + आम्) । 'नलोपः—' सूत्र से 'न्' का लोप होकर 'नवानाम्' पद सिद्ध होता है ।

स्वर सञ्चार—'ञ्नित्यादिर्नित्यम्' सूत्र से 'कनिन्' प्रत्ययान्त 'नवन्' शब्द का आदि उदात्त स्वर है । 'अनुदात्तौ सुप्पितौ' सूत्र से

१. 'निन्यानवे नदियों का—' ।

'आम्' विभक्ति प्रत्यय का अनुदात्त स्वर होता है। इस प्रकार 'नवानाम्' पद में 'न' के अकार का उदात्त स्वर प्राप्त है। 'षट्त्रि—' सूत्र से उसका बाधकर विभक्ति प्रत्यय का उदात्त स्वर होता है।

सर्व शब्द का स्वर

१६. सर्वस्य सुपि। ६। १। १९१।

सुपि परे सर्वशब्दस्याऽऽदिरुदात्तः स्यात्। 'सर्वे॑ नन्दन्ति य॒शसा॑'[१]।

सर्व—सुप् विभक्ति प्रत्यय परे रहते सर्व शब्द का आदि उदात्त स्वर होता है।

सुपि—सुप् परे रहते सर्व शब्द के आदि अच् का उदात्त स्वर होता है; जैसे—'सर्वे॑—'[२]क।

टि० (क) 'सर्व' शब्द का प्रकृति स्वर से अन्तोदात्त स्वर होता है किन्तु विभक्ति प्रत्यय से युक्त होने पर आदि उदात्त स्वर हो जाता है।

(ख) 'सर्वे'—√'सृ' गतौ[३] धातु से 'सर्वनीघृष्वरिष्वलष्वशिवपद्व-प्रह्वेष्वा अतन्त्रे' इस उणादि सूत्र से 'सर्व' शब्द की निपातनात् सिद्धि होती हैं। 'सर्वादीनि—' सूत्र से उसकी सर्वनाम संज्ञा तथा 'कृत्तद्धित्—' सूत्र से प्रातिपदिक संज्ञा करके 'स्वौजस—' सूत्र से 'जस्' विभक्ति प्रत्यय होता है (सर्व + जस्)। 'जसः शि' सूत्र से 'जस्' के स्थान में 'शि' आदेश होता है। 'लशक्वतद्धिते' सूत्र से 'श्' की इत् संज्ञा तथा 'तस्य लोपः' सूत्र से लोप होता है (सर्व + इ)। 'आद्गुणः' सूत्र से गुण होकर 'सर्वे' पद सिद्ध होता है।

स्वर सञ्चार—'सृ' धातु के ऋकार का 'धातोः' सूत्र से उदात्त स्वर होता है। 'आद्युदात्तश्च' सूत्र से 'र्व' के अकार का उदात्त स्वर है। 'अनुदात्तौ सुप्पितौ' सूत्र से 'शि' प्रत्यय के इकार का अनुदात्त स्वर है। 'र्व' के उदात्त अकार के साथ अनुदात्त इकार का एकीभाव होने के कारण 'एकादेश उदात्तेनोदात्तः' सूत्र से 'र्वे' के एकार का उदात्त स्वर प्राप्त है उसे बाधकर 'सर्वस्य सुपि' सूत्र से 'स' के अकार का उदात्त स्वर होता है।

---

१. ऋ० सं०। १०। ७१। १०।

२. 'सब स्तुति करते हैं—'।

३. भ्वा० प० [illegible]।

ञिदन्त एवं निदन्त शब्दों का स्वर

१७. ञ्नित्यादिर्नित्यम् । ६ । १ । १९७ ।

ञिदन्तस्य निदन्तस्य चाऽऽदिरुदात्तः स्यात् । 'यस्मिन् विश्वानि पौंस्या'[1] । पुंसः कर्मणि ब्राह्मणादित्वात् ष्यञ् । 'सुते दधिष्व नश्च नः'[2] । 'चायतेरसुन्' । 'चायेरन्ने ह्रस्वश्च' इति चकारादसुनो नुडागमश्च ।

ञ्नित्य—ञित् एवं नित् प्रत्ययान्त शब्द का नित्य आदि उदात्त स्वर होता है ।

ञिदन्त—ञिदन्त एवं निदन्त शब्द का आदि उदात्त स्वर होता है; जैसे— '—पौंस्या'[3क] । पुंस शब्द का ब्राह्मणादि गण में पाठ होने के कारण कर्म अर्थ में 'ष्यञ्' प्रत्यय होता है ।

'—चनः'[4ख] । 'चायेरन्ने ह्रस्वश्च' इस उणादि सूत्र से 'चाय्' धातु से 'असुन्' प्रत्यय होता है और 'नुट्' का आगम होता है ।

टि० (क) पौंस्या—√'पा' रक्षणे[5] धातु से 'पाते डुम्सुन्'[6] सूत्र के द्वारा 'डुम्सुन्' (उम्स) प्रत्यय होता है (पा + उम्स) । प्रत्यय के डकार की इत्संज्ञा और लोप होने के कारण सामर्थ्य से 'टेः' सूत्र के द्वारा 'पा' के आकार का लोप होता है (पुम् + स) । 'मोऽनुस्वारः' सूत्र से 'म्' का अनुस्वार होकर 'पुंस' शब्द सिद्ध होता है ।[7]

'पुंसो भावः कर्म वा पौंस्यम्' इस विग्रह के अनुसार 'गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च' सूत्र से 'ष्यञ्' (य) प्रत्यय होता है (पुंस + य) । 'यस्येति च' सूत्र से 'स' के अकार का लोप होता है (पुंस्य) । 'तद्धितेष्वचामादेः' सूत्र से 'पु' के उकार को 'औ' वृद्धि

---

१. ऋ० सं० । १ । ५ । ९ ।
२. ऋ० सं० । १ । ३ । ६ ।
३. 'जिस (सोम) में सब बल रहता है—' ।
४. 'सोमयाग में हमारे अन्न को स्वीकार करो—' ।
५. भ्वा० प० अ० । ९२५ ।
६. उ० । ४ । १७८ ।
७. √'पूञ्', पवने (क्र्या० उ० से० । १४८२) धातु से 'पाते डुम्सुन्' । उ० । ४ । १७८ । सूत्र के पाठ भेद से प्राप्त 'पुञो डुम्सुन्' सूत्र से भी 'पुंस' शब्द की सिद्धि मानते हैं । (अम० पृ० २०३) ।

होकर 'पौंस्य' शब्द बनता है। उसकी प्रातिपदिक संज्ञा करके 'स्वौज-समौट्—' सूत्र से 'टा' (आ) विभक्ति प्रत्यय होता है (पौंस्य + आ)। 'अकः सवर्णे दीर्घः' सूत्र से दीर्घ होकर 'पौंस्या' पद सिद्ध होता है।

स्वर सञ्चार—'धातोः' सूत्र से 'पा' धातु के आकार का उदात्त स्वर है। 'आद्युदात्तश्च' सूत्र से 'डुम्सुन्' प्रत्यय के उकार का उदात्त स्वर है किन्तु प्रकृति प्रत्यय समुदाय से निष्पन्न 'पुंस' शब्द का नित्वात् 'ञ्नित्यादिर्नित्यम्' सूत्र से आदि उदात्त स्वर है। 'पुंस' शब्द से 'ष्यञ्' प्रत्यय करके निष्पन्न 'पौंस्य' शब्द के औकार का ञित् होने के कारण आदि उदात्त स्वर ही है। विभक्ति प्रत्यय का 'अनुदात्तौ सुप्पितौ' सूत्र से अनुदात्त स्वर है जिसका अनुदात्त स्वर के साथ एकीभाव होने पर अनुदात्त स्वर ही रहता है और उदात्त के प्रभाव से उसका स्वरित हो जाता है।

(ख) चनः—√'चायृ' (चाय्) पूजानिशामनयोः[1] धातु से अन्न अर्थ गम्यमान रहते 'चायेरन्ने ह्रस्वश्च' सूत्र से क्रमशः 'असुन्' (अस्) प्रत्यय धातु को 'नुट्' (न्) का आगम तथा धातु के आकार को ह्रस्व होता है (चय् + न् + अस्)। 'लोपो व्योर्वलि' सूत्र से यकार का लोप होता है (च + न् + अस्)। प्रकृति प्रत्यय मिलाकर निष्पन्न 'चनस्' शब्द की प्रातिपदिक संज्ञा करके विभक्ति कार्य करने ने 'चनः' पद सिद्ध होता है।

स्वर सञ्चार—'चाय्' धातु के आकार का 'धातोः' सूत्र से उदात्त स्वर है। 'असुन्' प्रत्यय के अकार का उदात्त स्वर है किन्तु प्रकृति प्रत्यय समुदाय रूप 'चनः' पद के 'च' के अकार का निदन्त होने के कारण 'ञ्नित्यादिर्नित्यम्' सूत्र से उदात्त स्वर होता है।

(ग) 'नित्य' पद का अर्थ—ञित् या नित् प्रत्ययान्त शब्द होने के आधार पर विहित आद्युदात्त स्वर नित्य होता है अर्थात् अन्य सूत्र से अन्य स्वर की प्राप्ति होने पर भी सतिशिष्ट नियम से स्वरान्तर विहित नहीं होता है।

१. भ्वा० से० । ८८० ।

पथिन् एवं मथिन् शब्दों का स्वर

१८. पथिमथोः सर्वनामस्थाने । ६ । १ । १९९ ।

आदिरुदात्तः स्यात् । 'अयं पन्थाः'[१] । सर्वनामस्थाने किम् ? 'ज्योतिष्मतः पथो रक्षः'[२] । उदात्तनिवृत्तिस्वरेणान्तोदात्तं पदम् ।

पथि—पथिन् एवं मथिन् शब्दों का सर्वनामस्थान (प्रथमा के तीनों वचन और द्वितीया के एकवचन एवं द्विवचन) प्रत्यय परे रहते आदि उदात्त स्वर होता है ।

आदि—आदि उदात्त स्वर होता है; जैसे—'पन्थाः'[३क] ।

प्रस्तुत सूत्र में 'सर्वनामस्थाने' पद का ग्रहण क्यों किया गया है ? इस पद का ग्रहण सर्वनामस्थान भिन्न प्रत्ययों के परे रहते 'पथिन्' एवं मथिन्' शब्दों के आदि उदात्त स्वर के निषेध के लिये है '—पथः—'[४ख] ।

टि० (क) 'पन्थाः'—√'पथ' (पथ्) गतौ[५] धातु से 'पथिमथिभ्यामिनिः' सूत्र के द्वारा 'इनि' (इन्) प्रत्यय होकर (पथ् + इन्) 'पथिन्' शब्द सिद्ध होता है। इसकी प्रातिपदिक संज्ञा करके 'स्वौजसमौट्—' सूत्र से 'सु' (स्) विभक्ति प्रत्यय होता है (पथिन् + स्) । 'सुडनपुंसकस्य' सूत्र से 'स्' की सर्वनामस्थान संज्ञा होती है और 'पथिमथ्यृभुक्षामात्' सूत्र से 'न्' के स्थान में 'आ' आदेश होता है (पथि + आ + स्) । 'इतोऽत् सर्वनामस्थाने' सूत्र से 'थि' के इकार को अकार आदेश होता हैं (पथ + आ + स्) । 'थोन्थः' सूत्र से 'थ' को 'न्थ' आदेश होता है (पन्थ + आ + स्) । 'अकः सवर्णे दीर्घः' सूत्र से 'न्थ' के अकार का आकार के साथ दीर्घ एकादेश होता है (पन्था + स्) । सकार का रुत्व विसर्ग होकर 'पन्थाः' पद सिद्ध होता है ।

स्वर सञ्चार—'पथ्' धातु के आकार का 'धातोः' सूत्र से उदात्त स्वर है। 'इन्' प्रत्यय के इकार का 'आद्युदात्तश्च' सूत्र से उदात्त स्वर है। 'पथि' में 'थि' के उदात्त इकार के स्थान में आदिष्ट

१. ऋ० सं० । ४ । १८ । १ ।
२. ऋ० सं० । १० । ५३ । ६ । तथा तै० सं० । ३ । ४ । २ । ० ।
३. 'यह मार्ग—' ।
४. 'ज्योतिर्मय मार्गों की रक्षा करो—' ।
५. भ्वा० प० से० । ८४७ ।

अकार का भी स्थानिवत्वात् उदात्त स्वर होता है। प्रकृति प्रत्यय समुदाय से निष्पन्न 'पन्थाः' पद में 'न्था' के आकार का उदात्त स्वर प्राप्त है उसको बाधकर 'पथिमथोः सर्वनामस्थाने' सूत्र से 'प' के अकार उदात्त स्वर होता है।

(ख) 'पथः'—'पथिन्' शब्द की प्रातिपदिक संज्ञा करके 'स्वौजसमौट्—' सूत्र से 'शस्' (अस्) विभक्ति प्रत्यय होता है (पथिन् + अस्)। 'यचि भम्' सूत्र से 'भ' संज्ञा होती है और 'अचोऽन्त्यादि टि' सूत्र से 'टि' संज्ञा होती है। 'भस्य टेर्लोपः' सूत्र से 'पथिन्' शब्द के 'टि' संज्ञक 'इम्' का लोप होता है (पथ् + अस्)। प्रकृति प्रत्यय मिलाकर सकार का रुत्व विसर्ग करने से 'पथः' पद सिद्ध होता है।

स्वर सञ्चार—'पथिन्' शब्द के इकार का 'आद्युदात्तश्च' सूत्र से उदात्त स्वर है और विभक्ति प्रत्यय के अकार का 'अनुदात्तौ सुप्पितौ' सूत्र से अनुदात्त स्वर है किन्तु 'पथिन्' शब्द के उदात्त इकार का लोप होने से उसके बाद वर्तमान विभक्ति प्रत्यय के अनुदात्त अकार का 'अनुदात्तस्य च—' सूत्र से उदात्त स्वर होता है।

तवै प्रत्ययान्त शब्द का स्वर

१९. अन्तश्च तवै युगपत्। ६।१।२००।

तवै प्रत्ययान्तस्याद्यन्तौ युगपदुदात्तौ स्तः। 'हर्षसे दातवा उ'।[1]

अन्त—तवै प्रत्ययान्त शब्द के आदि तथा अन्त दोनों अचों का उदात्त स्वर होता है।

तवै—तवै प्रत्ययान्त शब्द का आदि अन्त दोनों अच् साथ साथ उदात्त होता है; जैसे—'—दातवै'[2]क।

टि० (क) 'दातवै'—√'डुदाञ्' (दा) दाने[3] धातु से 'तुमुन्' (क्रियार्था क्रिया) के अर्थ में 'तुमर्थे सेसेनसेऽसेन्क्सेकसेनध्यैअध्यैनकध्यैकध्यैन-शध्यैशध्यैन्तवैतवेङ्तवेनः' सूत्र से 'तवै' प्रत्यय होकर 'दातवै' पद सिद्ध होता है।

स्वर सञ्चार—'दा' धातु के आकार का 'धातोः' सूत्र से उदात्त स्वर होता है। 'तवै' प्रत्यय के अकार का 'आद्युदात्तश्च' सूत्र से

१. ऋ० सं० ४।२१।६।
२. देने के लिये प्रसन्न होते हो।
३. जु० उ० भ० [illegible]

उदात्त स्वर होता है। इस प्रकार सतिशिष्ट नियम से 'दातवै' पद के 'त' के अकार का उदात्त स्वर प्राप्त है किन्तु उसको बाधकर 'अन्तश्च तवै युगपत्' सूत्र से 'दा' के आकार का तथा 'वै' के ऐकार का उदात्त स्वर होता है। /

क्षय शब्द का स्वर

२०. क्षयो निवासे। ६। १। २०१।

आद्युदात्तः स्यात्। 'स्वे क्षये शुचिव्रत'[१]।

क्षयो—क्षय शब्द का निवास अर्थ मेंक आदि उदात्त स्वर होता है।

आद्यु—क्षय शब्द का निवास अर्थ में आदि उदात्त स्वर होता है; जैसे—'क्षये'[२]ख।

टि० (क) क्षय शब्द के निम्नलिखित अर्थ उपलब्ध होते हैं।[३]

१—निवास (घर)
२—गति (चलना)
३—शोष (सूखना तथा रोग)
४—उपचय (क्षीण होना)
५—कल्पान्त (सृष्टि का अन्त)

निवास से भिन्न गति आदि अर्थों में प्रयुक्त 'क्षय' शब्द का प्रत्यय स्वर से अन्तोदात्त स्वर होता है।

(ख) क्षये—√'क्षि' निवासगत्योः[४] धातु से संज्ञा अर्थ में 'पुंसि संज्ञायाम्' सूत्र से 'घ' (अ) प्रत्यय होता है (क्ष + अ)। 'आर्धधातुकं शेषः' सूत्र से अकार की आर्धधातुक संज्ञा होती है और 'सार्वधातु—' सूत्र से 'क्षि' के इकार को 'ए' गुण होता है (क्षे + अ)। 'एचोऽयवायावः' सूत्र से 'क्षे' के एकार को अयादेश होकर 'क्षय' शब्द बनता है। उसकी प्रातिपदिक संज्ञा करके 'स्वौजसमौट्—' सूत्र से 'ङि' (इ) विभक्ति प्रत्यय होता है (क्षय + इ)। 'आद्गुणः' सूत्र से

१. ऋ० सं० । १० । ११८ । १ । तथा तै० ब्रा० । २ । ४ । ११७ ।
२. 'हे शुचिव्रत ! अपने स्थान में—'।
३. तु० प० अ० । १४०७ ।
४. अम० पृ० ५१, २१६, ३८८ तथा ४२२ ।

'य' के अकार के साथ इकार का गुण एकादेश होकर 'क्षये' पद सिद्ध होता है।

स्वर सञ्चार—'क्षि' धातु के इकार का 'धातोः' सूत्र से उदात्त स्वर होता है और 'घ' प्रत्यय के अकार का 'आद्युदात्तश्च' सूत्र से उदात्त स्वर होता है। इस प्रकार 'क्षय' शब्द का सतिशिष्ट नियम से अन्तोदात्त स्वर होता है। विभक्ति प्रत्ययगत इकार का 'अनुदात्तौ सुप्पितौ' सूत्र से अनुदात्त स्वर है। 'य' के उदात्त अकार के साथ अनुदात्त इकार का एकीभाव होने से 'एकादेश उदात्तेनोदात्तः' सूत्र से 'ये' के एकार का उदात्त स्वर प्राप्त है किन्तु निवास अर्थ गम्यमान रहते उसको बाधकर 'क्षयो निवासे' सूत्र से 'क्ष' के अकार का उदात्त स्वर होता है।

वृषादिगण में पठित शब्दों का स्वर

२१. वृषादीनां च। ६। १। २०३।

आदिरुदात्तः। आकृतिगणोऽयम्। 'वाजे॑भिर्वा॒जिनी॑वती'[१]। 'इन्द्र॒ वाणी॒ः'[२]।

वृषा—वृषादिगणक पठित शब्दों का आदि उदात्त स्वर होता है।

आदि—आदि उदात्त स्वर होता है। वृषादिगण आकृतिगण है। जैसे—'वाजे॑भिः—'[३ख]। '—वाणी॒ः'[४ग]।

टि० (क) वृषादिगण—

वृषः। जनः। ज्वरः। ग्रहः। हयः। नयः। गयः। तायः। तयः। चयः। अमः। वेदः। सूदः। अंशः। गुहा। शमरणो संज्ञायाम्। सम्मतौ भावकर्मणोः। मन्त्रः। शान्तिः। कामः। यामः। आरा। धारा। कारा। वहः। कल्पः। पादः। इति वृषादिराकृतिगणः। अविहितलक्षणमाद्युदात्तत्वं वृषादिषु ज्ञेयम्।

---

१. ऋ० सं०। १। ३। १०।, वा० सं०। २०। ८४।, सा०। १८६।, तै० ब्रा०। २। ४। ३। १। तथा निरु०। ११। २६।
२. ऋ० सं०। ७। ३१। १२। तथा सा०। १७६५।
३. 'हवि रूप अन्न के कारण अन्न वाली—'।
४. 'इन्द्र की स्तुति—'।

(ख) वाजे॑भिः—√'वज' (वज्) गतौ[1] धातु से 'हलश्च' सूत्र के द्वारा 'घञ्' (अ) प्रत्यय होता है (वज् + अ)। 'अलोन्त्यात्पूर्व उपधा' सूत्र से 'वज्' के 'व' के अकार की उपधा संज्ञा होती है और 'अत उपधायाः' सूत्र से उसकी वृद्धि होकर प्रकृति प्रत्यय मिलाने से 'वाज' शब्द बनता है।

उसकी प्रातिपदिक संज्ञा करके 'स्वौजसमौट्—' सूत्र से 'भिस्' विभक्ति प्रत्यय होता है (वाज + भिस्) 'अतो भिस् ऐस्' सूत्र से 'भिस्' विभक्ति प्रत्यय के स्थान में 'ऐस्' आदेश प्राप्त है। 'बहुलं छन्दसि' सूत्र से बाहुलकात् 'ऐस्' आदेश नहीं होता है (वाज + भिस्)। 'बहुवचने झल्येत्' सूत्र से 'ज' के अकार को एकार होता है तथा सकार को रुत्व विसर्ग करने से 'वाजेभिः' पद निष्पन्न होता है।

स्वर सञ्चार—'वज्' धातु के अकार का 'धातोः' सूत्र से उदात्त स्वर है और 'घञ्' प्रत्यय के अकार का 'आद्युदात्तश्च' सूत्र से उदात्त स्वर है। इस प्रकार 'वाज' शब्द में अन्तोदात्त स्वर प्राप्त है उसको बाधकर 'ञ्नित्यादिर्नित्यम्' सूत्र से आदि उदात्त स्वर प्राप्त है उसको भी बाधकर 'वृषादीनां च' सूत्र से 'वा' के आकार का उदात्त स्वर होता है।

(ग) वाणीः—√'वण' (वण्) शब्दे[2] धातु से 'अच इः' सूत्र से 'इ' प्रत्यय होता है और 'व' के अकार को आकार होकर 'वाणी' शब्द बनता है। उसकी प्रातिपदिक संज्ञा करके 'स्वौजसमौट्—' सूत्र से 'शस्' (अस्) विभक्ति प्रत्यय होता है (वाणी + अस्)। 'प्रथमयोः पूर्वसवर्णः' सूत्र से पूर्वसवर्ण दीर्घ एकादेश होकर तथा सकार का रुत्व विसर्ग होकर 'वाणीः' पद सिद्ध होता है।

स्वर सञ्चार—'वण्' धातु के अकार का 'धातोः' सूत्र से उदात्त स्वर है और 'इ' प्रत्यय का 'आद्युदात्तश्च' सूत्र से उदात्त स्वर है। इस प्रकार 'वाणीः' पद का सतिशिष्ट नियम से अन्त उदात्त स्वर प्राप्त है किन्तु उसको बाधकर 'वृषादीनां च, सूत्र से आदि उदात्त स्वर होता है।

---

१. भ्वा० प० से० । २५२ ।

२. चु० उ० से० । १५५१ ।

शुष्क एवं धृष्ट शब्दों का स्वर

२२. शुष्कधृष्टौ । ६ । १ । २०६ ।

एतावाद्युदात्तौ स्तः । असंज्ञार्थमिदम् । 'अतसं न शुष्कम्'[१] ।

शुष्क—शुष्क एवं धृष्ट शब्दों का आद्युदात्त स्वर होता है ।

एता—ये आद्युदात्त होते हैं । यह स्वर विधान संज्ञा के लिये नहीं है; जैसे—'—शुष्कम्'[२क] ।

टि० (क) शुष्कम्—√'शुष' (शुष्) शोषणे[३] धातु से 'निष्ठा' सूत्र से 'क्त' (त) प्रत्यय होता है (शुष्+त)। 'शुषः कः' सूत्र से 'त' को 'क' आदेश होकर 'शुष्क' शब्द बनता है उसकी प्रातिपदिक संज्ञा करके विभक्ति कार्य करने से 'शुष्कम्' पद सिद्ध होता है ।

स्वर सञ्चार—'शुष्' धातु के उकार का 'धातोः' सूत्र से उदात्त स्वर है। प्रत्यय के अकार का 'आद्युदात्तश्च' सूत्र से उदात्त स्वर है । इस प्रकार सतिशिष्ट नियम से 'शुष्कम्' पद में 'क' के अकार का उदात्त स्वर प्राप्त है उसको बाधकर 'शुष्कधृष्टौ' सूत्र से 'शु' के उकार का उदात्त स्वर होता है ।

आशित शब्द का स्वर

२३. आशितः कर्ता । ६ । १ । २०७ ।

कर्तृवाची आशितशब्द आद्युदात्तः । 'कृषन्नित् फाल आशितम्'[४] ।

आशि—कर्त्रर्थक आशित शब्द का आदि उदात्त स्वर होता है ।

कर्तृ—कर्तृवाची आशित शब्द का आदि उदात्त स्वर होता है; जैसे—'—आशितम्'[५क] ।

टि० (क) आशितम्—आ + √'अश' (अश्) भोजने[६] धातु से कर्त्ता अर्थ में 'क्त' (त) प्रत्यय का निपातन होता है (आ + अश् + त)।

---

१. ऋ० सं० । ४ । ४ । ४ ।, वा० सं० । १३ । १२ । तथा तै० सं० । १ । २ । १४ । २ ।
२. 'जैसे सूखी लकड़ी को (जलाते हो) उसी तरह—' ।
३. दि० प० अ० । ११८६ ।
४. ऋ० सं० । १० । ११७ । ७ ।
५. 'हल जोतकर अन्न उत्पन्न करता है ।'
६. क्र्या० प० से० । १५२३ ।

'आर्धधातुकं शेषः' सूत्र से 'त' की आर्धधातुक संज्ञा होती है और 'आर्धधातुकस्येड्वलादेः' सूत्र से 'त' से पूर्व 'इट्' (इ) का आगम होता है (आ + अश् + इ + त)। 'अकः सवर्णे दीर्घः' सूत्र से दीर्घ होकर 'आशित' शब्द बनता है। उसकी प्रातिपदिक संज्ञा करके विभक्ति कार्य करने से 'आशितम्' पद सिद्ध होता है।

स्वर सञ्चार—आकार का 'उपसर्गाश्चाभिवर्जम्' सूत्र से उदात्त स्वर है, 'अश्' धातु के अकार का 'धातोः' सूत्र से उदात्त स्वर है तथा (इ + त) प्रत्यय के इकार का 'आद्युदात्तश्च' सूत्र से उदात्तस्वर है। इस प्रकार सतिशिष्ट स्वर से 'आशितम्' पद में 'शि' के इकार का उदात्त स्वर प्राप्त है किन्तु उसको बाधकर 'आशितः कर्ता' सूत्र से कर्ता अर्थ गम्यमान रहते 'आशित' शब्द के आकार का उदात्त स्वर होता है।

जुष्ट एवं अर्पित शब्दों का स्वर

२४. जुष्टार्पिते च छन्दसि। ६। १। २०९।

आद्युदात्ते वा स्तः।

जुष्टा—जुष्ट एवं अर्पित शब्दों का वेद में विकल्प से आद्युदात्त स्वर होता है।

आद्यु—इनका विकल्प से आद्युदात्त स्वर होता है।

मन्त्र में जुष्ट एवं अर्पित शब्दों का स्वर

२५. नित्यं मन्त्रे। ६। १। २१०।

एतत्सूत्रं शक्यमकर्तुम्। 'जुष्टो दमुनाः'[1]। 'षळर आहु रर्पितम्'[2]। इत्यादेः पूर्वेणैव सिद्धेः। छन्दसि पाठस्य व्यवस्थिततया विपरीताऽऽपादानायोगात्। 'अर्पिताः षष्टिर्न चलाचलासः'[3] इत्यत्रान्तोदात्तदर्शनाच्च।

नित्यं—मन्त्र में जुष्ट तथा अर्पित शब्दों का नित्य आद्युदात्त स्वर होता है।

एतत्—इस सूत्र का प्रणयन नहीं किया जा सकता था क्योंकि—

---

१. ऋ० सं०। ५। ४। ५।, अथर्व० सं०। ७। ७३। ६।, तै० ब्रा०। २। ४। १। १ तथा निरु०। ४। ५।

२. ऋ० सं०। १। १६४. १२। तथा अथर्व० सं०। ६। ६। १२।

३. ऋ० सं०। १। १६४। ४८। अथर्व० सं०। १०। ८। ४। तथा निरु०। ४। २७।

प्रथमतः, 'जुष्टो—'[१] तथा 'अर्पितम्'[२] आदि की स्वर सिद्धि 'जुष्टोऽर्पिते—' सूत्र से हो जाती है।

दूसरे, वेद में मन्त्रों का सस्वर पाठ व्यवस्थित होने के कारण उपर्युक्त पदों में उपलब्ध स्वरों से भिन्न स्वर होने की सम्भावना नहीं है।

तीसरे, 'अर्पिता—'[३] उदाहरण में मन्त्र होने पर भी सूत्रार्थ के विपरीत अन्तोदात्त स्वर दिखलाई पड़ता है, जिससे इस स्वर विधि की मन्त्र में नित्यता का कोई अर्थ नहीं रह जाता।

इन कारणों से 'नित्यं मन्त्रे' सूत्र का वैयर्थ्य स्पष्ट है।

युष्मद् तथा अस्मद् शब्दों का स्वर

२६. युष्मदस्मदोर्ङसि । ६ । १ । २११ ।

आदिरुदात्तः स्यात् । 'नहि षस्तव नो मम'[४] ।

युष्म—युष्मद् तथा अस्मद् शब्दों का षष्ठी एकवचन ङस् विभक्ति प्रत्यय परे रहते आदि उदात्त स्वर होता है।

आदि—आदि उदात्त स्वर होता है; जैसे—'—मम'[५क] ।

टि० (क) मम—अस्मद् शब्द की प्रातिपदिक संज्ञा करके 'स्वौजसमौट्' सूत्र से 'ङस्' विभक्ति प्रत्यय होता है (अस्मद् + ङस्)। 'तवममौ ङसि' सूत्र से 'अस्मद्' शब्द के 'अस्म' (म पर्यन्त) भाग को 'मम' आदेश होता है (मम + अद् + ङस्)। 'अतो गुणे' सूत्र से पररूप होता है (ममद् + ङस्)। 'युष्मदस्मद्भ्यां ङसोऽश्' सूत्र से 'ङस्' के स्थान में 'अश्' (अ) आदेश होता है (ममद् + अ)। 'अचोऽन्त्यादि टि' सूत्र से 'अद्' की टि संज्ञा होती है और 'शेषे लोपः' सूत्र से उसका लोप होकर प्रकृति प्रत्यय मिलाने से 'मम' पद सिद्ध होता है।

स्वर सञ्चार—अस्मद् शब्द के 'स्म' के अकार का 'फिषोऽन्त—' सूत्र से उदात्त स्वर है, उसके स्थान में विहित 'ममद्' के अन्त्य

---

१. 'प्रिय वस्तु देने वाला,—'।
२. 'छः अ० दिये हुये हैं, ऐसा कहा जाता है'।
३. 'साठ चलने वाली अरे लगी हैं'।
४. ऋ० सं० । ८ । ३३ । १६ ।
५. 'वह (इन्द्र) न तुम्हारे (शासन में और) न मेरे (शासन में रमण करता है)।

अकार का भी स्थानिवत्त्वात् उदात्त स्वर है। विभक्ति प्रत्यय का 'अनुदात्तौ सुप्पितौ' सूत्र से अनुदात्त स्वर है और उसके स्थान में आदिष्ट 'अस्' के अकार का भी स्थानिवत्त्वात् अनुदात्त स्वर है। 'ममद्' के उदात्त अकार का लोप होने पर 'अस्' के अनुदात्त अकार का 'अनुदात्तस्य च—' सूत्र से उदात्त स्वर प्राप्त है, उसको बाधकर 'युष्मदस्मदोर्ङसि' सूत्र से प्रथम 'म' के अकार का उदात्त स्वर होता है।

२७. ङयि च। ६। १। २१२।

'तुभ्यं' हिन्वानः'[1]। 'मह्यं वातः पवताम्'[2]।

ङयि—युष्मद् तथा अस्मद् शब्द का ङे विभक्ति प्रत्यय परे रहते भी आदि उदात्त स्वर होता है।

तुभ्यं—जैसे—'तुभ्यम्—'[3क]। 'मह्यम्—'[4ख]।

टि० (क) तुभ्यम्—'युष्मद्' शब्द की प्रातिपदिक संज्ञा करके 'स्वौजसमौट्—' सूत्र से 'ङे' विभक्ति प्रत्यय होता है (युष्मद् + ङे)। 'ङेप्रथमयोरम्' सूत्र से 'ङे' विभक्ति प्रत्यय को 'अम्' आदेश होता है (युष्मद् + अम्)। 'तुभ्यमह्यौ ङयि' सूत्र से 'युष्म' (म पर्यन्त) शब्द को 'तुभ्य' आदेश होता है (तुभ्य + अद् + अम्)। 'अतो गुणे' सूत्र से पररूप एकादेश होता है (तुभ्यद् + अम्)। 'अचोन्त्यादि टि' सूत्र से 'तुभ्यद्' के 'अद्' की टि संज्ञा और 'शेषे लोपः' सूत्र से उसका लोप होकर प्रकृति प्रत्यय मिलाने से 'तुभ्यम्' पद सिद्ध होता है।

स्वर सञ्चार—इस पद में भी 'मम' के समान 'अनुदात्तस्य च—' सूत्र से उदात्त स्वर प्राप्त है, उसको बाधकर 'ङयि च' सूत्र से 'तु' के उकार का उदात्त स्वर होता है।

(ख) मह्यम्—इस पद की सिद्धि एवं स्वर सञ्चार 'तुभ्यम्' पद के समान है।

---

१. ऋ० सं० । २ । ३६ । १ ।
२. ऋ० सं० । १० । १२८ । २ ।, तै० सं० । ४ । ७ । १४ । १ । तथा अथर्व० सं० । ५ । ३ । ३ ।
३. 'तुम्हारे लिये लाया गया (यह सोम)—'।
४. 'वायु मुझे शुद्ध करे—'।

यत् प्रत्ययान्त शब्द का स्वर

२८. यतोऽनावः । ६ । १ । २१३ ।

यत्प्रत्ययान्तस्य द्व्यच् आदिरुदात्तो नावं विना। 'युञ्जन्त्यस्य काम्या'[१] । कर्मेणिङन्तादचो यत् । अनावः किम् ? 'नुवर्ति नाव्यानाम्'[२] ।

यतो—यत् प्रत्ययान्त नाव शब्द से भिन्न दो अच् वाले शब्द का आदि उदात्त स्वर होता है ।

यत्—'नाव' शब्द को छोड़कर दो अच् वाले 'यत्' प्रत्ययान्त शब्द का अदि उदात्त स्वर होता है; जैसे—'—काम्या'[३क] ।

इस पद में 'कर्मेणिङ्' सूत्र से 'णिङ्' प्रत्ययान्त होने के कारण 'अचो यत्' से 'यत्' प्रत्यय होता है ।

प्रस्तुत सूत्र में 'अनावः' पद का ग्रहण क्यों किया गया है? इस पद का ग्रहण यत् प्रत्ययान्त दो अच् वाले 'नाव' शब्द के आद्युदात्त स्वर के निषेध के लिये है; जैसे—'—नाव्यानाम्'[४ख] ।

टि० (क) काम्या—√'कमु' (कम्) कान्तौ[५] धातु से 'कर्मेणिङ्' सूत्र के द्वारा 'णिङ्' (इ) प्रत्यय होता है (कम्+इ)। 'अलोन्त्यात्पूर्व उपधा' सूत्र से 'कम्' के अकार की उपधा संज्ञा होती है और 'अत उपधायाः' सूत्र से उसको वृद्धि होकर 'कामि' शब्द बनता है। 'सनाद्यन्ता धातवः' सूत्र से 'कामि' (काम्) की धातु संज्ञा होती है और 'अचो यत्' सूत्र से 'यत्' (य) प्रत्यय होता है (काम्+यं)। प्रकृति प्रत्यय मिलाकर 'टा' विभक्ति प्रत्यय एवं दीर्घ आदि कार्य करने से 'काम्या' पद सिद्ध होता है।

स्वर सञ्चार—'काम्' धातु के आकार का 'धातोः' सूत्र से उदात्त स्वर है और उससे विहित 'यत्' प्रत्यय के 'य' के अकार का 'आद्युदात्तश्च' सूत्र से उदात्त स्वर है। सतिशिष्ट नियम से 'काम्य'

१. ऋ० सं० । १ । ६ । २ ।, वा० सं० । २३ । ६ ।, तै० सं० । ७ । ४ । २० । १ ।, साम० १४६८ । तथा अथर्व० सं० । २० । २६ । ५ ।, ४ । ७ । ११ । एवं । ६ । । ६ । १० ।

२. ऋ० सं० । १ । १२१ । १३ ।

३. 'इस (इन्द्र) के (रथ में) अभीष्ट (घोड़ों) को जाते हैं।'

४. 'निन्यानवे नोका से पार होने योग्य जलाशय—'।

५. स्वा० आ० सं० । ४४३ ।

शब्द में 'य' के अकार का उदात्त स्वर रहता है। 'टा' विभक्ति प्रत्यय के आकार का सुप्त्वात् अनुदात्त स्वर है। 'य' के उदात्त अकार के साथ अनुदात्त आकार का एकीभाव होने पर 'एकादेश—' सूत्र से 'काम्या' पद में 'म्या' के आकार का उदात्त स्वर प्राप्त है; उसको बाधकर 'यतोऽनावः' सूत्र से 'का' के आकार का उदात्त स्वर होता है।

(ख) नाव्यानाम्—√'णुद' (णुद्) प्रेरणे[1] धातु के 'ण्' को 'णो नः' सूत्र से 'न्' होता है (नुद्)। 'ग्लानुदिभ्यां डौ', सूत्र से 'डौ' (औ) प्रत्यय होता है (नुद्+औ)। 'अचोऽन्त्यादि टि' सूत्र से 'नुद्' के 'उद्' की टि संज्ञा होती है और 'टेः' सूत्र से उसका लोप होकर 'नौ' शब्द बनता है।

'नावा तार्यं नाव्यं जलम्' इस विग्रह के अनुसार 'नौ' शब्द से 'नौवयोः—' सूत्र से 'यत्' (य) प्रत्यय होता है (नौ+य)। 'वान्तो यि प्रत्यये' सूत्र से 'नौ' के औकार को 'आव्' आदेश होकर 'नाव्य' शब्द बनता है। उसकी प्रातिपदिक संज्ञा एवं विभक्ति कार्य करने से 'नाव्यानाम्' पद सिद्ध होता है।

स्वर सञ्चार—इस पद में प्रत्यय स्वर से 'व्य' के अकार का उदात्त स्वर प्राप्त है; उसको बाधकर 'तित्स्वरितम्' सूत्र से उसका स्वरित स्वर होता है और विभक्ति प्रत्यय 'नाम्' के आकार का सुप्त्वात् अनुदात्त स्वर है किन्तु स्वरित के बाद होने के कारण उसका प्रचय स्वर हो जाता है।

ण्यत् प्रत्ययान्त शब्द का स्वर

२९. ईडवन्दवृशंसदुहां ण्यतः। ६। १। २१४।

एषां ण्यदन्तानामादिरुदात्तः। 'ईड्यो नूतनैरुत'[2]। 'आजुह्वान ईड्यो वन्द्यश्च'[3]। 'श्रेष्ठं नो धेहि वार्यम्'[4]। 'उक्थमिन्द्राय शंस्यम्'[5]।

१. तु० उ० अ०। १२८२।
२. ऋ० सं०। १। १। २। तथा निरु०। ७। १६।
३. ऋ० सं०। १०। ११०। ३।, वा० सं०। २९। २८। अथर्व० सं०। ५। ११। ३। तै० ब्रा०। ३। ६। ३। २। तथा निरु० ८। ८।
४. ऋ० सं०। ३। २१। २ तथा तै० ब्रा०। ३। ६। ७। १।
५. ऋ० सं०। १। १०। ५। तथा साम०। ३६३।

ईड—ण्यत् प्रत्ययान्त ईड वन्द वृ शंस तथा दुह धातुओं से निष्पन्न शब्द का आदि उदात्त स्वर होता है।

एषा—इन ण्यत् प्रत्ययान्त शब्दों का आदि उदात्त स्वर होता है; जैसे—'ईड्यो'—[१]क। '—वन्द्य:—'[२]ख। '—वार्यं'[३]ख। '—शंस्यम्'[४]ख।

टि० (क) ईड्य:—√'ईड' (ईड्) स्तुतौ[५] धातु से 'ऋहलोर्ण्यत्' सूत्र के द्वारा 'ण्यत्' (य) प्रत्यय होकर तथा प्रकृति प्रत्यय मिलाकर विभक्ति कार्य करने से 'ईड्य:' पद सिद्ध होता है।

स्वर सञ्चार—तित् प्रत्ययान्त होने के कारण इस पद में 'तित्स्वरितम्' सूत्र से 'ड्य' के अकार का स्वरित स्वर प्राप्त है उसको बाध कर, 'ईडवन्द—' सूत्र से ईकार का उदात्त स्वर होता है।

(ख) √'वदि' (वन्द) अभिवादनस्तुत्यो[६], √'वृङ्' (वृ) संभक्तौ,[७] √'शंसु' (शंस्) स्तुतौ[८] धातुओं से 'ण्यत्' प्रत्यय होकर क्रमशः 'वन्द्य:' 'वार्यम्', 'शंस्यम् पद सिद्ध होते हैं।

स्वर सञ्चार—'इन पदों में भी 'ईड्य:' पद के समान 'ईडवन्द—' सूत्र से आदि उदात्त स्वर होता है।

वेणु तथा इन्धान शब्दों का स्वर

२४. विभाषा वेण्विन्धानयोः। ६।१।२१५।

आदिरुदात्तो वा। 'इन्धानो अग्निम्'[९]।

विभा—वेणु और इन्धान शब्द का विकल्प से आदि उदात्त स्वर होता है।

---

१. 'पूर्व ऋषियों से और नवीन ऋषियों से स्तुत्य हैं'।

२. 'देवों को बुलाने वाले स्तुत्य तथा वन्दनीय हो'।

३. 'हमको उत्तम धन दो'।

४. 'इन्द्र की स्तुति करने योग्य स्तोत्र—'

५. चु० उ० से०, १६६८।

६. भ्वा० आ० से०। ११।

७. क्र्या० आ० से०। १५०९।

८. भ्वा० प० से०। ७२८।

९. ऋ० सं०। २। २५। १। तथा त० ब्रा०। २। ८। ५।

आदि—विकल्प से आदि उदात्त स्वर होता है; जैसे—'इन्धानो—' [1]क।

टि० (क) इन्धानः—√'ञिइन्धी' (इन्ध) दीप्तौ[2] धातु से 'वर्तमाने—' सूत्र के द्वारा 'लट्' प्रत्यय होता है (इन्ध् + लट्) 'लटः शतृ—' सूत्र से 'लट्' के स्थान में 'शानच्' (आन) प्रत्यय होकर तथा प्रकृति प्रत्यय मिलाकर विभक्ति-कार्य करने से 'इन्धानः पद सिद्ध होता है।

स्वर सञ्चार—इन्ध्' धातु के इकार का 'धातोः' सूत्र से उदात्त स्वर है और 'शानच्' (आन) प्रत्यय के आकार का प्रत्यय स्वर से आदि उदात्त स्वर है, किन्तु प्रकृति प्रत्यय समुदाय रूप 'इन्धान' शब्द के अकार का 'चितः' सूत्र से उदात्त स्वर प्राप्त है, उसको बाधकर 'विभाषा वेण्विन्धानयोः' सूत्र से इकार का विकल्प से उदात्त स्वर होता है। विकल्प पक्ष में 'न' के आकार का ही उदात्त स्वर होता है।
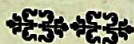
१. 'अग्नि को प्रज्वलित करता हुआ'।
२. रु० आ० से०। १४४८।

चतुर्थ प्रकाश

अव्युत्पन्न प्रातिपदिक का स्वर विचार

अव्युत्पन्न प्रातिपदिक का सामान्य स्वर

३१. फिषोऽन्त उदात्तः[1] । १ । १ ।

प्रातिपदिकं फिट् । तस्यान्त उदात्तः स्यात् । 'उच्चैः' ।

फिषो—अव्युत्पन्न प्रातिपदिक (फिट्) का उदात्त स्वर होता है ।

प्राति—प्रातिपदिक को फिट् कहते है । उसके अन्त अच् का उदात्त स्वर होता है; जैसे—'उच्चैः'[2]क ।

टि० (क) इस पद में 'च्चै' के ऐकार का उदात्त स्वर होता है ।

गुद शब्द का स्वर

३२. गुदस्य च । १ । ४ ।

अन्त उदात्तः स्यान्न तु स्त्रियाम् । 'गुदम्' । 'अस्त्रियाम्' किम् ? 'आन्त्रेभ्यस्ते गुदाभ्यः'[3] । 'स्वाङ्गशिटामदन्तानाम्' इत्यन्तरङ्गमाद्युदात्तत्वम् । ततष्टाप् ।

गुद -'गुद' शब्द का भी (स्त्रिलिङ्ग से भिन्न लिङ्ग में अन्तोदात्त स्वर होता है) ।

अन्त—'स्त्रिलिङ्ग' भिन्न 'गुद' शब्द का अन्तोदात्त स्वर होता है; जैसे—'गुदम्'[4]क ।

इस सूत्र में 'अस्त्रियाम् पद की अनुवृत्ति क्यों मानते हैं ? इस पद की अनुवृत्ति स्त्रिलिङ्ग 'गुदा' शब्द के अन्तोंदात्त स्वर के निषेध के लिये है, जैसे—'—गुदाभ्यः'[5]ख ।

---

१. ३१ से ५४ सूत्र तक शान्तनवाचार्य के फिट् सूत्र हैं ।

२. 'ऊँचे स्वर से—' ।

३. ऋ० सं० । १० । १६३ । ३ ।

४. 'मलद्वार' ।

५. 'तुम्हारी आंत और मलद्वार से—' ।

इस पद में 'स्वाङ्गशिटा—' सूत्र से अन्तरङ्ग आद्युदात्त स्वर होता है। अनन्तर 'गुद' शब्द से टाप् (आ) प्रत्यय होकर 'गुदा' शब्द बनता है।

टि० (क) 'गुदम्' पद में 'द' के अकार का उदात्त स्वर होता है।

(ख) 'गुदाभ्यः' पद में 'गु' के उकार का उदात्त स्वर होता है।

हिष्ठ, वत्सर, ति, शत् तथा थ अन्त वाले शब्दों का स्वर

३३. हिष्ठवत्सरतिशत्थान्तानाम् । १ । ७ ।

एषामन्त उदात्तः स्यात् । 'अतिशयेन बहुलो' वंहिष्ठः' । नित्त्वादाद्युदात्तत्वे प्राप्ते । 'बंहिष्ठैरश्वैः सुवृता रथेन'[१] । 'यद्वंहिष्ठो नातिविधे'[२]—इत्यादौ व्यत्ययादाद्युदात्तः । 'संवत्सरः' । अव्ययपूर्वपदप्रकृतिस्वरोऽत्र बाध्यते इत्याहुः । 'सप्ततिः' । 'अशीतिः' । लघावन्त—' इति प्राप्ते । 'चत्वारिंशत्' । इहाऽपि प्राग्वत् । 'अभ्यूर्णवन्नाना प्रभृथस्यायोः'[३] । अव्ययपूर्वपदप्रकृतिस्वरोऽत्र इत्याहुः ।

हिष्ठ—हिष्ठ, वत्सर, ति, शत् तथा थ से अन्त होने वाले शब्दों का अन्तोदात्त स्वर होता है।

एषा—इन ('हिष्ठ' आदि से अन्त होने वाले शब्दों) का अन्तोदात्त स्वर होता है; जैसे—'वंहिष्ठैः'[४]क, किन्तु—'वंहिष्ठो—'[५] । इस पद में व्यत्यय से आद्युदात्त स्वर होता है।

'संवत्सरः'[६]क । इस पद में अव्ययपूर्वपद के प्रकृति स्वर का बाध होता है।

'सप्ततिः'[७]क । 'अशीतिः'[८]क । इन पदों में 'लघावन्ते—' सूत्र से मध्योदात्त स्वर प्राप्त है।

---

१. ऋ० सं० । ५ । ६२ । ९ ।
२. ऋ० सं० । ५ । ६२ । ९ ।
३. ऋ० सं० । ५ । ४१ । १९ ।
४. 'वहुत—' ।
५. 'बहुत से घोड़ों वाले रथ से—' ।
६. 'सम्वत्सर' ।
७. 'सत्तर' ।
८. 'अस्सी' ।

'चत्वारिंशत्' [१]क। इस पद में भी पूर्ववत् स्वर प्राप्त है।

'—प्रभृ थस्या—' [२]क। इस पद में अव्यय पूर्वपद का प्रकृति स्वर प्राप्त था, उसका वाध होता है।

टि० (क) ऊपर दिये गये उदाहरणों में अन्त अच् का उदात्त स्वर है।

कृष्ण शब्द का स्वर

३४. कृष्णस्याऽमृगाख्याचेत्। १। ११।

अन्त उदात्तः स्यात्। वर्णानां तणेत्याद्युदात्तत्वे प्राप्ते अन्तोदात्तो विधीयते। 'कृष्णानां व्रीहीणाम्'। 'कृष्णो नो नाव वृषभः'[३]। मृगाख्यायां तु—'कृष्णो रात्र्यै'।

कृष्ण–मृग से भिन्न वाचक कृष्ण शब्द का अन्त उदात्त स्वर होता है।

अन्त—(मृग से भिन्न वाचक कृष्ण शब्द का) अन्त उदात्त स्वर होता है; जैसे—'कृष्णानाम्'[४]ख। 'कृष्णो—'[५]क। इन पदों में ऋकार का 'वर्णानां तण—' सूत्र से आद्युदात्त स्वर प्राप्त है।

मृग का पर्याय वाचक होने पर तो 'कृष्णो—'[६]ख के ऋकार का ही उदात्त स्वर होता है।

टि० (क) इन पदों में 'ष्ण' के अकार का उदात्त स्वर होता है।

३५. वा नामधेयस्य। १। १२।

कृष्णस्येत्येव। 'अयं वां कृष्णो आश्विना'[७]। 'कृष्ण ऋषिः'।

वा–नामधेय अर्थ में कृष्ण शब्द का विकल्प से अन्तोदात्त स्वर होता है।

कृष्ण—यह स्वर विधि कृष्ण शब्द के ही लिये है; जैसे—'—कृष्णं–'[८]क। 'कृष्ण—'[९]क।

---

१. 'चालीस'।

२. 'तेज अथवा जल के दान से यजमान को आच्छादित करती हुई'।

३. ऋ० सं०। १। ७९। २।

४. काले धानों का—'।

५. काले रंग के मेघ ने प्रचण्ड गर्जन किया।

६. रात्री के लिये काला मृग—

७. 'ऋ० सं०। ८। ८५। ३।'

८. 'हे अश्विनीकुमारों यह आपका कृष्ण—'

९. 'कृष्ण नाम का ऋषि—'।

टि० (क) इन पदों में 'ष्ण' के अकार के विकल्प से उदात्त स्वर होता है।

विकल्प पक्ष में 'कृ' के ऋकार का उदात्त स्वर होता है।

शुक्ल और गौर शब्दों का स्वर

३६. शुक्लगौरयोरादिः । १ । १३ ।

नित्यमुदात्तः स्यादित्येके वेत्यनुवर्त्तंत इति तु युक्तम् । 'सरो गौरो यथा पिब'[1] त्यत्रान्तोदात्तदर्शनात् ।

शुक्ल—शुक्ल और गौर शब्दों का नामधेय अर्थ रहते आद्युदात्त स्वर होता है।

नित्य—कुछ लोगों के अनुसार इन शब्दों का नित्य उदात्त स्वर का विधान होता है। किन्तु 'वा' पद की अनुवृत्ति लाना ही ठीक है '—गौरो—'[2] पद में अन्तोदात्त दर्शन से भी यह बात स्पष्ट हो जाती है।

दिशा से भिन्न अर्थ वाले आशा शब्द का स्वर

३७ आशाया अदिगाख्या चेत् । १ । १८ ।

दिगाख्याव्यावृत्यर्थमिदम् अतएव ज्ञापकाद्दिक्पर्यायस्याद्युदात्तता । 'इन्द्र आशाभ्यस्परि'[3] ।

आशा–दिशा वाचक से भिन्न आशा शब्द का आन्तोदात्त स्वर होता है।

दिगा—दिशावाचक आशा शब्द की व्यावृत्ति के लिए यह रूप है। अतएव इस ज्ञापन से दिशावाचक आशा शब्द का आद्युदात्त स्वर होता है; जैसे—'—आशा'[4]क ।

टि० (क) इस पद में प्रथम आकार का उदात्त स्वर होता है।

घृतादिगण पठित शब्दों का स्वर

३८. घृतादीनां च । १ । २२ ।

अन्त उदात्तः स्यात् । 'घृतं मिमिक्षे'[5] । आकृतिगणोऽयम् ।

---

१. 'ऋ० सं० । ८।८५।२४ । साम० ७३३ । तथा अथर्व० सं० । २०।२२।३।
२. जिस प्रकार गौर मृग सरोवर में जल पीता है'।
३. ऋ० सं० । २ । ४१ । २१ ।
४. 'इन्द्र चारो ओर से—'।
५. ऋ० सं० । २।३।११।, वा० सं० । १७।८८ । तथा तै० आ० ।१०।१०।२।

घृता—घृतादिगण में पढ़े गये शब्दों के अन्त्य अच् का उदात्त स्वर होता है।

अन्त—(घृतादिगण पठित शब्दों का) अन्त उदात्त स्वर होता है; जैसे—'घृतम्—'[1]क। यह आकृतिगण है।

टि० (क) इस पद में 'त' के अकार का उदात्त स्वर होता है।

ज्येष्ठ और कनिष्ठ शब्दों का स्वर

३९. ज्येष्ठकनिष्ठयोर्वयसि १।२२।

अन्त उदात्तः स्यात्। 'ज्येष्ठ आह चमसा'[2]। 'कनिष्ठ आह चतुरः'[3]। वयसि किं? ज्येष्ठः[1] (=श्रेष्ठः)। 'कनिष्ठः' (=अल्पिष्ठः)। इह नित्वादाद्युदात्त एव।

ज्येष्ठ—अवस्था अर्थ गम्यमान रहते 'ज्येष्ठ' और 'कनिष्ठ' शब्दों का अन्तोदात्त स्वर होता है।

अन्त—अन्तोदात्त स्वर होता है; जैसे-'ज्येष्ठ-'[4]क। 'कनिष्ठ-'[5]क।

प्रस्तुत सूत्र के 'वयसि' पद का ग्रहण क्यों किया गया? (इस पद का ग्रहण अवस्था से भिन्न अर्थ वाले 'ज्येष्ठ' तथा 'कनिष्ठ' शब्द के अन्तोदात्त स्वर के निषेध के लिए है); जैसे—ज्येष्ठः।[6]ख। 'कनिष्ठः'[7]ख। इन पदों में नित् प्रत्ययान्त होने के कारण आद्युदात्त स्वर होता है।

टि० (क) इन पदों में 'ष्ठ' के अकार का उदात्त स्वर होता है।
(ख) इन पदों का 'ञ्नित्यादिर्नित्यम्' सूत्र से आद्युदात्त स्वर होता है।

नपुंसकलिङ्ग वाले शब्द का स्वर

४०. नब्विषयस्याऽनिसन्तस्य।२।२६।

१. 'घी छिड़कता हूँ'।
२. ऋ० सं०।४।३३।५।
३. ऋ० सं०।४।३३।५।
४. 'ज्येष्ठ ऋभु ने कहा—चमस (सोम रस रखने वाले) पांच में—'।
५. 'छोटे ने कहा—चार करेगें—'।
६. 'बड़ा'।
७, 'छोटा'।

'वने_न वायः'[१] । इसन्तस्य तु 'सर्पिः' । नप् = नपुंसकम् ।

नप्—इसन्तवर्जित नित्य नपुंसक शब्द के अच् का आद्युदात्त स्वर होता है ।

वने—जैसे; 'वने_'[२]क । 'इस्' प्रत्ययान्त 'सर्पिः'[३] शब्द का तो अन्तोदात्त स्वर होता है । 'नप्' नपुंसक को कहते हैं ।

टि० (क) इस पद के 'व' के अकार का उदात्त होता है ।

स्वाङ्गवाचक एवं सर्वनाम शब्दों का स्वर

४१. स्वाङ्गशिटामदन्तानाम् । २ १६ ।

शिट् = सर्वनाम । 'कर्णाभ्यां छुबुकादधि'[४] । 'ओष्ठाविव मधु'[५] । 'विश्वो विहायः'[६] ।

स्वाङ्ग—स्वाङ्गवाचक तथा अदन्त सर्वनाम संज्ञक शब्दों के आदि अच् का उदात्त स्वर होता है ।

शिट्—शिट् सर्वनाम को कहते हैं; जैसे—'कर्णाभ्यां छुबुकात्—'[७]क । 'ओष्ठौ—'[८]क । 'विश्वो—'[९]क ।

टि० (क) इस पदों के आदि अच् का उदात्त स्वर होता है ।

उन्, ऋ तथा वन् से अन्त होनेवाले शब्दों का स्वर

४२. उनर्वन्नन्तानाम् । २ । ३२ ।

उन्—'वरुणं वो रिशादसम्'[१०] । ऋ—'स्वसारं त्वा कृणवै_'[११] । वन्—'पीवानं मेषम्'[१२] ।

---

१. ऋ० सं० १० । २९ । १ ।
२. 'वन में जिस प्रकार पक्षी—' ।
३. 'घृत' ।
४. ऋ० सं० । १० । १६३ । १ ।
५. ऋ० सं० । २ । २९ । ६ ।
६. ऋ० सं० । १ । २८ । ६ ।
७. 'दोनों कानों तथा ठुढ़ी के नीचे—'
८. 'दोनों ओठों को मधु की तरह—'
९. 'यह विश (परमेश्व) सबका गन्तव्य स्थान है' ।
१०. ऋ० सं० । ५ । ६४ । १ ।
११. ऋ० सं० । १० । १०८ । ९ ।
१२. ऋ० सं० । १० । २७ । १७ ।

उनर्व--उन् ऋ तथा वन् से अन्त होनेवाले शब्दों का आद्युदात्त स्वर होता है।

उन्—जैसे—'वरुणं—'[१]क। 'स्वसारम्—'[२]क। 'पीवानम्—'[३]क।

टि० (क) इन पदों में आदि अच् का उदात्त स्वर होता है।

'अक्ष' शब्द का स्वर

४३ अक्षस्याऽदेवनस्य। २। २५।

आदिरुदात्तः स्यात्। 'तस्यु नाक्षः'[४]। देवने तु—'अक्षैर्मा दीव्यः'[५]।

अक्ष—द्यूत से भिन्न अर्थवाले 'अक्ष' शब्द का आद्युदात्त स्वर होता है।

आदि—आदि उदात्त स्वर होता है; जैसे—'—अक्षः'[६]क। द्यूत अर्थ गम्यमान रहते 'अक्षैः—'[७] पद का अन्तोदात्त स्वर होता है।

टि० (क) इस पद में अकार का उदात्त स्वर होता है।

ग्रामादिगण पठित शब्दों का स्वर

४४. ग्रामादीनां च। २। ३८।

'ग्रामः'[८]। 'सोमः'[९]। 'यामेषु'[१०]।

ग्रामा—ग्रामादिगण पठित शब्दों का आद्युदात्त स्वर होता है।

ग्रा—'ग्रामः—'[११]क। 'सोमः—'[१२]क। 'यामेषु—'[१३]क।

टि० (क) इन पदों में आदि अच् का उदात्त स्वर होता है।

---

१. 'तुम दोनों शत्रु नाशक वरुण को—'।
२. 'तुमको मैं वहन बना लूँगा'।
३. 'मोटे मेड़े को—'।
४. ऋ० सं०। १। १६४। १३।
५. ऋ० सं०। १०। ३४। १३।
६. उसका धूरा नहीं थकता।
७. 'पासों से मत खेलो'।
८. ऋ० सं०। ३। ३३। ११।
९. ऋ० सं०। ९। ९६। ५, साम०। ५२७। ६४३। निरु०। १४। १२।
१०. ऋ० सं०। १। ४८। ४।
११. 'गाँव'।
१२. 'सोमलता'।
१३. 'पहरों में'।

'कपिकेश' और 'हरिकेश' शब्दों का स्वर

४५. कपिकेशहरिकेशयोश्छन्दसि । ४ । ७३ ।

'कपिंकेशः' । 'हरिंकेशः' ।[१]

कपि—कपिकेश और हरिकेश शब्दों के सभी अचों का वेद में पर्याय से उदात्त स्वर होता है ।

कपि—जैसे—'कपिंकेशः'[२क] । 'हरिंकेशः'[३क] ।

टि० (क) इन पदों के सभी अचों का पर्याय से उदात्त स्वर होता है ।

'न्यङ्' तथा 'स्वर' शब्दों का स्वर

४६. न्यङ्स्वरौ स्वरितौ । ४ । ७४ ।

स्पष्टम् । 'न्यंङ्ङुत्तानः' । 'व्यंचक्षयत्स्वः' ।

न्यङ्—'न्यङ्' तथा 'स्वर्' शब्दों के अच् का स्वरित स्वर होता है ।

स्प—इस सूत्र का अर्थ स्पष्ट है । (उदाहरण); जैसे—'न्यंङ्—'[४क] । '—स्वंः'[५क] ।

टि० (क) इन पदों के अच् का स्वरित स्वर होता है ।

बिल्व, भक्ष्य तथा वीर्य शब्दों का स्वर

४७. बिल्वभक्ष्यवीर्याणि छन्दसि । ४ । ७७ ।

अन्तः स्वरितानि स्युः । 'ततो बिल्वंस्य उदतिष्ठत्'[६] ।

बिल्व—'बिल्व' 'भक्ष्य' तथा 'वीर्य' शब्दों का वेद में अन्त स्वरित स्वर होता है ।

अन्त—इनका अन्त स्वरित स्वर होता है; जैसे—'—बिल्वंस्य—'[७क] ।

टि० (क) इस पद में 'ल्व' के आकार का स्वरित स्वर होता है ।

---

१. वा० सं० । १५ । १५ ।
२. 'भूरे केश वाला' ।
३. ,, ,,
४. 'नीचे की ओर मुह करके लेटा हुआ—' ।
५. 'सूर्य को दिखाया—' ।
६. तै० सं० । २ । १ । ८ । २ ।
७. 'उससे बेल निकला' ;

'त्वत्', 'त्व', 'सम' तथा 'सीम' शब्दों का स्वर

४८. त्वत्त्वसमसीमेत्यनुच्चानि। ४। ७८।

'स्तरीरुत्वत्'[१]। 'उतत्वः पश्यन्'[२]। 'नभन्तामन्यके समे'[३]। 'सीमस्म'[४]।

त्व—त्वत्, त्व, सम तथा सीम शब्दों का अनुदात्त स्वर होता है।

स्तरी—(उदाहरण); जैसे— '—त्वत्'क। '—त्व—'[५]क। '—समे'[६]। 'सीमस्मै'[७]क।

टि० (क) इन पदों में सर्वानुदात्त स्वर होता है।

अथर्ववेद में 'सीम' शब्द का स्वर

४९. सीमस्याऽथर्वणेऽन्त उदात्तः। ४। ७९।

अथर्वण इति प्रायिकम्। तत्रष्टदृस्येत्येवं परं वा। 'तेन वासस्तनुते सीमस्मै'[८] इत्यृक्वेदेऽपि भवत्येव।

सीम—'सीम' शब्द का अथर्ववेद में अन्तोदात्त स्वर होता है।

अथ—'अथर्वणे' ऐसा प्रायिक निर्देश है। (इसका तात्पर्य है) ऋग्वेद में और अन्यत्र भी ऐसा उदाहरण देखा गया है। इससे '—सीमस्मै'क[९] इस ऋग्वेद की ऋचा में भी अन्तोदात्त स्वर होता है।

टि० (क) इस पद में 'म' के आकार का उदात्त स्वर है।

निपातों का स्वर

५०. निपाता आद्युदात्ताः। ४। ८०।

---

१. ऋ० सं०। ७। १०१। ३।
२. ऋ० सं०। १०। ७१। ४।
३. ऋ० सं०। ८। ३९। १।
४. ऋ० सं०। १। ११५। ४।
५. 'कोई कोई देखता या समझता हुआ भी—'।
६. 'सभी शत्रुओं को मारें'।
७. 'समस्त संसार में—'।
८. ऋ० सं०। १। ११५। ४।
९. 'समस्त संसार के वस्त्र (अंधकार) फैलाता है'।

'स्वाहा'[१]।

निपाता—निपातों का आदि उदात्त स्वर होता है।

स्वाहा—(उदाहरण); जैसे—'स्वाहो' [२क]।

टि० (क) इस पद में 'स्वा' के आकार का उदात्त स्वर होता है।

उपसर्गों का स्वर

५१. उपसर्गाश्चाभिवर्जम्। ४। ८१।

उप—'अभि'क को छोड़कर उपसर्गों का आदि उदात्त स्वर होता है।

टि० (क) 'अभि' का अन्तोदात्त स्वर होता है।

एवादिगण में पठित शब्दों का स्वर

५२. एवादीनामन्तः। ४। ८२।

एवमादीनामिति पाठान्तरम्। 'एव'। 'एवम्'। 'नूनम्'। 'सह ते पुत्र सूरिभिः'।

एवा—एवादिगण पठित शब्दों का अन्तोदात्त स्वर होता है।

एव—'एवमादीनामन्तः' ऐसा पाठान्तर भी मिलता है। (उदाहरण); जैसे—'एव[३]क।' 'एवम्[४]क।' 'नूनम्[५]क।' 'सह—'[६]क।

टि० (क) इन पदों में अन्तिम अच् का उदात्त स्वर होता है।

चादिगण में पठित शब्दों का स्वर

५३. चादयोऽनुदात्ताः। ४। ८४।

स्पष्टम्।

चाद—चादिगण में पढ़े गये शब्दों का अनुदात्त स्वर होता है।

स्पष्टम्—इस सूत्र का अर्थ स्पष्ट है।

---

१. वा० सं०। ४। ६।
२. 'अग्नि की पत्नी—'।
३. निश्चय वाक्य।
४. इस प्रकार, हाँ।
५. अवश्य।
६. हे मित्रदेव वरुण स्तोता ऋत्विजों के साथ (हम समृद्ध हों)।

पाद के अन्त में 'यथा' शब्द का स्वर

५४. यथेति पादान्ते । ४ । ८५ ।

'तन्नु मिमृभवो यथा'[१] । पादान्ते किं ? 'यथा नो आदितिः करत्'[२] ।

यथे—पाद के अन्त में वर्त्तमान 'यथा' शब्द का सर्वानुदात्त स्वर होता है; जैसे—'—यथा'[३क] ।

प्रस्तुत सूत्र में 'पादान्ते' पद का ग्रहण क्यों किया गया है ? (इस पद का ग्रहण पादादि में वर्तमान 'यथा' शब्द के सर्वानुदात्त स्वर के निषेध के लिये है; जैसे—'यथा'[४ख] ।

टि० (क) इस पद का सर्वानुदात्त स्वर होता है ।

(ख) इस पद में 'य' के आकार का उदात्त स्वर होता है ।

द्विरुक्त पद में परवर्त्ती पद का स्वर

५५. अनुदात्तं च । ८ । ३ ।

द्विरुक्तस्य परं रूपं अनुदात्तं स्यात् । 'दिवे दिवे'[५] । 'प्रप्रायम्'[६] ।

अनु—दो बार कहे गये पद में बाद वाले पद का अनुदात्त स्वर होता है ।

द्विरु—द्विरुक्त पद के बाद वाले रूप का अनुदात्त स्वर होता है; जैसे—'—'दिवे'[७क] । 'प्रप्रा'[क ८] ।

टि० (क) इस पद में सर्वानुदात्त स्वर होता है ।

—:o:—

---

१. ऋ० सं० । ८ । ७५ । ५ ।

२. ऋ० सं० । १ । ४३ । २ ।

३. 'जिस प्रकार पृथ्वी देवी ने हमारे लिये किया—' ।

४. 'जिस प्रकार देवों के रथकार ऋभु लोग उस रथ के पास—' ।

५. ऋ० सं० । १ । १ । ७ ।, वा० सं० । ३ । २२ ।, तै० सं० । १ । ५ । ६ । २ । तथा साम० । १४ ।

६. ऋ० सं० । ७ । ८ । ४ ।, वा० सं० । १२ । ३४ । तथा तै० सं० । २ । ५ । १२ । ४ । एवं । ४ । २ । ३ । २ ।

७. प्रतिदिन ।

८. 'प्रकर्ष रूप से यह—' ।

पञ्चम प्रकाश

सम्बोधन पद का स्वर विचार

सम्बोधन पद का आदि उदात्त स्वर

५६. आमन्त्रितस्य च ।६।१।१९८।

आमन्त्रितस्याऽऽदिरुदात्तः स्यात्। 'अग्न इन्द्र वरुण मित्र देवाः'[१]।

आम—आमन्त्रितके शब्द का भी आदि उदात्त स्वर होता है।

आमन्त्रि—सम्बोधनान्त पद के आदि अच् का उदात्त स्वर होता है; जैसे—'अग्न इन्द्र वरुण मित्र देवाः'[२ख]।

टि० (क) सम्बोधनान्त पद को आमन्त्रित कहते हैं।

(ख) अग्न, इन्द्र, वरुण, मित्र तथा देवाः इन सम्बोधनान्त पदों के आदि अच् का उदात्त स्वर होता है।

सम्बोधन पद का सर्वानुदात्त स्वर

५७. आमन्त्रितस्य च ।८।१।१९।

पदात्परस्याऽपादादिस्थितस्याऽऽमन्त्रितस्य सर्वस्यानुदात्तः स्यात्। प्रागुक्तषाष्ठस्यापवादोऽयमाष्टमिकः। 'इमं मे गङ्गे यमुने सरस्वति'[३]। अपादादौ किं ? 'शुतुद्रि स्तोमम्'[४]।

---

१. ऋ० सं० । ५ । ४६ । २ ।

२. 'हे अग्नि, इन्द्र, वरुण मित्र तथा देवगण—'।

३. ऋ० सं० । १० । ७५ । ५ ।

४. (क) ऋ० सं० । १० । ७५ । ५ ।

(ख) पूरा मन्त्र—इमं मे गङ्गे यमुने सरस्वति
शुतुद्रि स्तोमं सचता परुष्ण्या।
असिक्न्या मरुद्वृधे वितस्तया
ऽऽर्जीकीये शृणुह्या सुषोमया॥

इस मन्त्र में 'सरस्वति' पद तक प्रथम पाद है और 'शुतुद्रि' पद से द्वितीय पाद प्रारम्भ होता है। 'शुतुद्रि' पद का पदात् पर होने पर भी द्वितीय पाद के आदि में स्थित होने के कारण सर्वानुदात्त स्वर नहीं होता है।

आम—पद से पर तथा अपादादि में स्थित सम्बोधन पद के सभी अचों का अनुदात्त स्वर होता है।

पदा—पद से परे अपादादि में स्थित सम्बोधन पद का सर्वानुदात्त स्वर होता है।

पहले कहे गये आद्युदात्त विधायक छठें अध्याय वाले 'आमन्त्रितस्य च' सूत्र का आठवाँ अध्यायगत सर्वानुदात्त स्वर विधान करने वाला यह 'आमन्त्रितस्य च' सूत्र अपवाद है। (उदाहरण); जैसे—'—मे गङ्गे यमुने सरस्वति'[1]क।

प्रस्तुत सूत्र में 'अपादादौ' पद का ग्रहण क्यों किया गया? इस पद का ग्रहण पादादि में वर्त्तमान सम्बोधन पद के सर्वानुदात्त स्वर के निषेध के लिये है; जैसे—'शुतुद्रि—'[2]ख।

टि० (क) इन पदो में सर्वानुदात्त स्वर होता है किन्तु 'मे' के स्वरित एकार के बाद (पदात्पर) रहने के कारण 'स्वरितात्संहितायामनुदात्तानाम्' सूत्र से एकश्रुति स्वर हो गया है।

(ख) इस पद में पदात्परत्व तथा अपादादित्व के अभाव में षाष्ठिक सूत्र से आद्युदात्त स्वर होता है।

सम्बोधन पद का अविद्यमानवद्भाव

५८. आमन्त्रितं पूर्वमविद्यमानवत् ।८।१।७२।

'अग्न इन्द्र'[3]। अत्र इन्द्रादीनां निघातो न। पूर्वस्याऽविद्यमानत्वेन पदात्परत्वाभावात्।

आम—पूर्ववर्ती आमन्त्रित पद अविद्यमानवद् होता है।

अग्न—जैसे—'अग्न इन्द्र'क इस उदाहरण में 'इन्द्र' आदि पदों का सर्वानुदात्त स्वर नहीं होता। उपर्युक्त उदाहरण में सम्बोधन 'अग्ने' पद के अविद्यमानवद् होने के कारण 'इन्द्र' आदि पदों का आष्टभिक सूत्र से सर्वानुदात्त स्वर नहीं होता है।

टि० (क) सम्बोधनान्त पूर्ववर्ती 'अग्न' पद के अविद्यमानवत् होने के कारण 'इन्द्र' पद का आष्टमिक सूत्र से सर्वानुदात्त स्वर न होकर षाष्ठिक सूत्र से आद्युदात स्वर होता है।

---

१. 'हे गङ्गा? यमुना? सरस्वति?—'।

२. हे शुतुद्रि? (शतलज इस) स्तुति को—'।

३. ऋ० सं० ५।४५।२।

अविद्यमानवद्भाव का निषेध

५९. नामन्त्रिते समानाधिकरणे सामान्यवचनम् ।८।१।७३।

समानाधिकरणे आमन्त्रिते परे विशेष्यं पूर्वमविद्यमानवन्न। 'अग्ने तेजस्विन्'। 'अग्ने त्रातः'[१]। सामान्यवचनं किम्? पर्यायेषु मा भूत्। 'अघ्न्ये देवि सरस्वति'।

नाम—सम्बोधन समानाधिकरण परे रहते पूर्ववर्ती विशेष्यभूत सम्बोधन पद का अविद्यमानवद्भाव नहीं होता; जैसे—'अग्ने तेजस्विन्'क[२]। 'अग्ने त्रातः'क[३]।

प्रस्तुत सूत्र में 'सामान्यवचनम्' पद का ग्रहण क्यों किया गया है? इस पद का ग्रहण पर्यायवाचक सम्बोधन पदों में पूर्ववर्ती पद के अविद्यमानवद् भाव के निषेध के लिये है; जैसे—'अघ्न्ये देवि सरस्वति—'ख[४]।

टि० (क) इन उदाहरणों में द्वितीय पद का सर्वानुदात्त स्वर होता है।

(ख) इस उदाहरण में प्रत्येक पद का आद्युदात्त स्वर होता है।

अविद्यमानवद्भाव का विकल्प

६०. सामान्यवचनं विभाषितं विशेषवचने। ८। १। ७४।

अत्र भाष्यकृता बहुवचनमिति पूरितम्। सामान्यवचनमिति च पूर्वसूत्रे योजितम्। आमन्त्रितान्ते विशेषणे परे पूर्वं बहुवचनान्तमविद्यमानवद् वा। 'देवीः षळुर्वीरुरु नः कृणोत'[५]। अत्र देवीनां विशेषणं षडिति। 'देवाः शरण्याः'। इह द्वितीयस्य निघातो वैकल्पिकः।

सामान्य—आमन्त्रित विशेषण परे रहते पूर्व में वर्तमान बहुवचनान्त विशेष्य पद का विकल्प से अविद्यमानवद्भाव होता है।

अत्र—महाभाष्यकार पतञ्जलि ने इस सूत्र में 'बहुवचनम्' पद का निवेश करके पूरा किया है और 'सामान्यवचनम्' पद को पूर्व सूत्र 'नामन्त्रिते—' में जोड़ दिया है।

---

१. ऋ० सं० । ८ । ६० । ५ ।
२. हे तेजस्वी अग्नि देव?
३. हे रक्षा करने वाले अग्नि देव?
४. हे पापरहित सरस्वती देवी?
५. ऋ० सं० । १० । १२८ । ५ ।

सम्बोधनान्त विशेषण परे रहते पूर्व में वर्तमान बहुवचनान्त पद विकल्प से अविद्यमानवद् होता है; जैसे—'देवी[क]: षळुर्वी—'[१]। इस उदाहरण में 'देवी:' पद का विशेषण 'षड्[ग] है। 'देवा:[ख] शरण्या:'[२]। इस उदाहरण में 'शरण्या:' पद का विकल्प से सर्वानुदात्त स्वर होता है।

टि० (क) 'देवी:' पद का विकल्प से अविद्यमानवद्भाव होता है।
(ख) इस पद का भी विकल्प से अविद्यमानवद्भाव होता है।
(ग) अविद्यमानवद्भाव मानने पर उपर्युक्त उदाहरणों में क्रमशः 'षट्' और 'शरण्या:' पद का अद्युदात्त स्वर होता है। अविद्यमानवद्भाव न मानने पर इनका सर्वानुदात्त स्वर होता है।

स्वरविधि में पराङ्गवद्भाव

६१. सुबामन्त्रिते पराङ्गवत्स्वरे।२।१।२।

सुबन्तमामन्त्रिते परे परस्याङ्गवत्स्वरे कर्त्तव्ये। "द्रवत्पाणी शुभस्पती'[३]। शुभ इति शुभेः क्विबन्तषष्ठ्यन्तस्य परशरीरानुप्रवेशे षाष्ठिकमामन्त्रिताद्युदात्तत्वम्। न चाष्टमिको निघातः शङ्क्यः। पूर्वामन्त्रितस्याऽविद्यमानत्वेन पादादित्वात्। 'यत्ते दिवो दुहितर्मर्त भोजनम्'[४]। इह दिवः शब्दस्याऽऽष्टमिको निघातः। 'परशुना वृश्चन्'।

सुबा—स्वरविधि में सम्बोधन पद परे रहते पूर्ववर्ती सुवन्त पद का पराङ्गवद्भाव होता है।

सुब—सुवन्त शब्द का सम्बोधन पद परे रहते स्वर विधि में पराङ्गवद्भाव होता है; जैसे—'शुभस्पती'क[५]। यहाँ क्विप् प्रत्ययान्त शुभ् शब्द का 'शुभः' षष्ठ्यन्त पद है उसका परवर्ती सम्बोधनान्त 'पती' पद के (शरीर) के साथ मिलने पर 'शुभस्पती' पद को आमन्त्रित मानकर उसका आद्युदात्त स्वर होता है। इस स्थिति में आष्टमिक सूत्र से सर्वानुदात्त स्वर होने की शङ्का नहीं करनी चाहिये; क्योंकि पूर्ववर्ती सम्बोधनान्त 'द्रवत्पाणी' पद के अविद्यमानवद् होने के कारण 'शुभस्पती' पद में भी पादादित्व है।

---

१. 'ये छः देवियां हमारी रक्षा करें—'।
२. 'देवतागण शरण देनेवाले हैं—'।
३. ऋ० सं०।१।३।१।
४. ऋ० सं०।७।८१।५।
५. हे फैलाये हुये हाथों वाले, तथा शुभकर्मों के रक्षक ?

'—दिवोदुहितः—'ख[1]। इस उदाहरण में 'दिवः' पद का आष्टमिक सूत्र से निघात होता है। 'परंशुना वृश्चन्'ग[2]।

टि० (क) 'शुभस्पती' पद में 'शुभः' षष्ठी विभक्ति का रूप है। 'पती' पद सम्बोधनान्त है। परवर्ती सम्बोधन पद का 'शुभः' पद का अङ्गवद्भाव होता है जिससे, 'द्रवत्पाणी' पद के अविद्यमानवत् होने के कारण 'शुभस्पती' पद का आद्युदात्त स्वर होता है।

(ख) इस उदाहरण में 'दिवः' पद का परङ्गवद्भाव होता है और 'दिवो दुहितः' समुदाय को सम्बोधन मान का आष्टमिक सूत्र से सर्वानुदात्त स्वर होता है।

(ग) इस उदाहरणों में भी 'परंशुना' पद को परवर्ती 'वृश्चन्' पद का अङ्गवद्भाव होकर 'परंशुना वृश्चन्' समुदाय का आमन्त्रित होने के कारण षाष्ठिक सूत्र से आद्युदात्त स्वर होता है।

पराङ्गवद्भाव की विशेष विधि

षष्ठ्यामन्त्रितकारकवचनम्। वा०। २२२३।

षष्ठ्यन्तमामन्त्रितान्तं प्रति यत्कारकं तद्वाचकं चेति परिगणनं कर्तव्यमित्यर्थः। तेनेह न। 'अयमंग्ने जरिता'[3]। 'एतेनाग्ने ब्रह्मणा'[4]। समर्थानुवृत्या वा सिद्धम्।

षष्ठ्या—'सुप्' शब्द के द्वारा षष्ठ्यन्त एवं सम्बोधनान्त के प्रति कारक का ग्रहण करना चाहिये।

षष्ठ्य—षष्ठ्यन्त एवं सम्बोधनान्त के प्रति कारक तथा उसके वाचक शब्द का परिगणन करना चाहिये। इसलिये आगे लिखे उदाहरणों में पराङ्गवद्भाव नहीं होता; जैसे—'अयमंग्ने—'[5]क। एतेनाग्ने—'[6]क।

---

१. ओ द्युलोक की पुत्री (उषा)? तुम्हारे पास मनुष्यों के लिये जो भोज्य अन्न है—।
२. "ओ कुल्हाड़ी से काटते हुये?"।
३. ऋ० सं०। १०। १४२। १।
४. ऋ० सं०। १। ३१। १८।
५. हे अग्नि? यह जरिता—'।
६. 'हे अग्नि? इस मन्त्र से—'।

'समर्थः पदविधिः'[1] सूत्र से 'समर्थ' पद की अनुवृत्ति से भी उपर्युक्त स्वर विधि (पराङ्गवद्भाव) सिद्ध होती है।

टि० (क) इन उदाहरणों में पराङ्गवद्भाव नहीं होता है। अतः दोनों उदाहरणों में क्रमशः 'अयम्' तथा 'एतेन' पदों का स्वतन्त्र स्वर होता है और 'अग्ने' पद का सर्वानुदात्त स्वर होता है।

अव्यय पदों के पराङ्गवद्भाव का निषेध

अव्ययानां न। वा०। १२२९।

'उच्चैरधीयान'।

अव्य—अव्ययों को उनके परवर्ती सम्बोधनान्त पद का अङ्गवद्भाव नहीं होता।

उच्चै—जैसे—'उच्चैः—'[२क]।

टि० (क) 'उच्चैः' इस अव्यय पद को अधीयान इस सम्बोधन पद का अङ्ग नहीं माना जाता। अतः 'उच्चैः' तथा 'अधीयान' इन दोनों पदों का स्वतन्त्र स्वर होता है।

अव्ययीभाव समास वाले पदों का पराङ्गवद्भाव

अव्ययीभावस्य त्विष्यते। वा०। १२३०।

'उपाग्न्यधीयान'।

अव्य—अव्ययीभाव समास वाले पद को उसके परवर्ती सम्बोधनान्त पद का अङ्गवद्भाव इष्ट है।

उपा—(उदाहरण); जैसे—'उपाग्न्य—'[3क]।

टि० (क) इस पद को 'अधीयान' पद का अङ्गवद् माना जाता है। अतः 'उपाग्न्यधीयान' इस समुदाय का षाष्ठिक सूत्र से आद्युदात्त स्वर होता है।

---

१. पा० सू०। २।१।१।
२. ओ जोर से पढ़ने वाले ?
३. हे अग्नि के समीप पढ़ने वाले ?

पूर्वाङ्गवद्भावं

पूर्वाङ्गवच्चेति वक्तव्यम् । वा० । १२२८ ।

'आते पितर्मरुताम्'[1] । 'प्रति त्वा दुहितर्दिवः'[2] ।

पूर्वा—षष्ठ्यन्त पद को उसके पूर्ववर्ती सम्बोधनान्त पद को भी अङ्गवत् मानना चाहिये ।

आते—(उदाहरण); जैसे—'—पितर्मरुताम्'[3क] । '—दुहितर्दिवः'[4क] ।

टि० (क) क्रमशः 'मरुताम्' एवं 'दिवः' पद को पूर्ववर्ती 'पितः' एवं 'दुहितः' पद का अङ्ग माना जाता है, अतएव स्वर की दृष्टि से 'पितर्मरुताम्' तथा 'दुहितर्दिवः' एक एक सम्बोधन पद हैं । इनका आष्टमिक सूत्र से सर्वानुदात्त स्वर होता है ।

—: ० :—

---

१. ऋ० सं० । २ । ३३ । १ ।
२. ऋ० सं० । १ । ३१ । १८ ।
३. हे मरुतों के जनक (रुद्र) ?
४. 'हे द्युलोक की पुत्री (उषा) ? तुमको—' ।

षष्ठ प्रकाश

प्रत्यय का स्वरविचार

प्रत्यय का सामान्य स्वर

६२. आद्युदात्तश्च । ३ । १ । ३ ।

प्रत्यय आद्युदात्त एव स्यात् । 'अग्निः'[1] । 'कर्तव्यम्' ।

आद्यु—प्रत्यय का आदि अच् उदात्त भी होता है ।

प्रत्यय—प्रत्यय आद्युदात्त ही होता है; जैसे—'अग्निः'[2क] । 'कर्तव्यम्'[3ख] ।

टि० (क) 'अग्निः' √ 'अगि' (अग्) 'गतौ'[4] धातु से 'इदितो नुम् धातोः' सूत्र से 'अ' तथा 'ग्' के बीच में 'नुम्' (न्) का आगम होता है (अ + न् + ग्) । 'अङ्गेर्नलोपश्च' सूत्र से 'न्' का लोप तथा 'नि' आदेश होकर 'अग्नि' शब्द बनता है । उसकी प्रातिपदिक संज्ञा करके विभक्तिकार्य करने से 'अग्निः' पद सिद्ध होता है ।

स्वर सञ्चार—'अग्' धातु के आकार का 'धातोः' सूत्र से उदात्त स्वर है । 'नि' प्रत्यय के इकार का 'आद्युदात्तश्च' सूत्र से उदात्त स्वर है, जिससे सतिशिष्ट नियम के द्वारा 'अग्निः' पद के इकार का उदात्त स्वर होता है ।

(ख) 'कर्तव्यम्'—√ कृ 'हिंसायाम्'[5] धातु से 'तव्यत्तव्यानीयरः' सूत्र के द्वारा 'तव्य' प्रत्यय होता है (कृ + तव्य) । 'आर्धधातुकं शेषः' सूत्र से 'तव्य' प्रत्यय की आर्धधातुक संज्ञा होती है और 'सार्वधातुकार्ध-धातुकयोः' सूत्र से 'कृ' के ऋकार को 'अर्' गुण होकर 'कर्तव्य' शब्द बनता है । उसकी प्रातिपदिक संज्ञा करके विभक्ति कार्य करने से 'कर्तव्यम्' पद सिद्ध होता है ।

---

१. ऋ० सं० । ८ । ४४ । १६ ।
२. आग ।
३. काटने योग्य ।
४. भ्वा० प० से० १४६ ।
५. क्र्या० उ० अ० १४९७, अथवा √'कृ विक्षेपे'—तु० उ० अ० १४१० ।

स्वर सञ्चार—'कृ' के ऋकार का 'धातोः' सूत्र से उदा स्वर है और 'आद्युदात्तश्च' सूत्र से 'तव्य' प्रत्यय के 'त' के अकार का उदात्त स्वर है, जिससे सतिशिष्ट नियम के द्वारा 'कर्तव्यम्' पद का मध्योदात्त स्वर होता है।

सुप् एवं पित् प्रत्यय का स्वर

६३. अनुदात्तौ सुप्पितौ । ३ । १ । ४ ।

पूर्वस्यापवादः । 'यज्ञस्य'[1] । 'नयो युच्छति'[2] । शप्तिपोरनुदात्ते स्वरितप्रचयौ ।

अनु—सुप् और पित् प्रत्यय अनुदात्त होते हैं।

पूर्व—'आद्युदात्तश्च' इस पूर्वसूत्र का 'अनुदात्तौ—' सूत्र अपवाद है; जैसे—'यज्ञस्य'[3]क । '—युच्छति'—[4]ख । 'युच्छति' पद में 'शप्' तथा 'पित्' प्रत्ययों का पित् होने के कारण अनुदात्त स्वर होता है, जिनका प्रकृत स्थल में स्वरित एवं प्रचयस्वर होता है।

टि० (क) 'यज्ञस्य'—√'यज' (यज्) 'देवपूजासंगतिकरणदानेषु'[5] धातु से 'यजयाच्यतविच्छप्रच्छरक्षोनङ्' सूत्र से 'नङ्' (न) प्रत्यय होता है (यज् + न)। 'स्तोः श्चुना श्चुः' सूत्र से 'न्' को 'ञ्' होकर 'यज्ञ' शब्द बनता है और प्रातिपदिक संज्ञा करके विभक्ति कार्य करने से षष्ठी के एकवचन में 'यज्ञस्य' पद सिद्ध होता है।

स्वर सञ्चार—'धातोः' सूत्र से 'यज्' धातु के अकार का उदात्त स्वर है। 'आद्युदात्तश्च' सूत्र से 'न' के अकार उदात्त स्वर है। प्रकृति प्रत्यय समुदायरूप 'यज्ञ' शब्द के 'ज्ञ' के अकार का सतिशिष्ट नियम से उदात्त स्वर है। उससे विहित विभक्ति प्रत्यय 'स्य' के अकार का 'अनुदात्तौ सुप्पितौ' सूत्र से अनुदात्त स्वर होता है। प्रकृत स्थल में उदात्त के अनुदात्त का विधान होने के कारण उसका स्वरित स्वर है।

---

१. ऋ० सं० । १० । ७१ । ११ ।
२. ऋ० सं० । ५ । ५४ । १३ ।
३. यज्ञ का।
४. जो कभी नष्ट या क्षीण नहीं होता।
५. भ्वा० उ० अ० १००२ ।

(ख) 'युच्छति'—√'युछ' (युछ्) 'प्रमादे'[1] धातु से 'वर्तमाने लट्' सूत्र के द्वारा 'लट्' (ल्) प्रत्यय होता है (युछ् + ल्) । 'तिप्तस्झि—' सूत्र से 'ल्' के स्थान में 'तिप्' (ति) प्रत्यय का आदेश होता है (युछ् + ति) । 'तिङ्शित्—' सूत्र से 'ति' की सार्वधातुक संज्ञा होती है और 'कर्तरि शप्' सूत्र से 'शप्' (अ) विकरण प्रत्यय होता है (युछ् + अ + ति) । 'छे च' सूत्र से 'तुक्' (त्) का आगम होता (युत् + छ + अ + ति) । 'स्तोः श्चुना श्चुः' सूत्र से 'त्' को 'च्' होकर 'युच्छति' पद सिद्ध होता है ।

स्वर सञ्चार—'युछ्' धातु के उकार का 'धातोः' से उदात्त स्वर है । 'शप्' प्रत्यय के अकार का तथा 'तिप्' प्रत्यय के इकार का पित् होने के कारण 'अनुदात्तौ सुप्पितौ' सूत्र से अनुदात्त स्वर होता है । इसके बाद उदात्त के बाद वर्तमान होने के कारण दोनों अनुदात्तों का क्रमशः स्वरित और प्रचय स्वर होता है ।

तित् प्रत्यय का स्वर

६४. तित्स्वरितम् । ६ । १ । १८५ ।

निगद व्याख्यातम् । 'क्वं नू नम्'[2] ।

तित्—तित् प्रत्यय का स्वरित स्वर होता ।

निग—उच्चारण से ही इस सूत्र का अर्थ स्पष्ट है । जैसे—'क्वं—'[3]क ।

टि० (क) 'क्वं'—'किम्' शब्द से सप्तमी एकवचन में 'ङि' विभक्ति प्रत्यय होता है (किम् + ङि) । 'किमोऽत्' सूत्र से अत् (अ) प्रत्यय होता है (किम् + अ + ङि) 'कृत्तद्धित'-सूत्र से समुदाय की प्रातिपदिक संज्ञा होती है और 'सुपो धातु—' सूत्र 'ङि' प्रत्यय का लोप होता है । (किम् + अ) । 'क्वाऽति' सूत्र से 'किम्' के स्थान में 'क्व' आदेश होता है (क्व + अ) । 'अतो गुणे' सूत्र से 'क्व' के अकार का पररूप होकर 'क्व' पद की सिद्धि होती है ।

---

१. भ्वा० प० से० २१४ ।
२. ऋ० सं० । १ । ३८ । २ । तथा । ८ । ७ । २० ।
३. इस समय तुम कहाँ थे ।

स्वर सञ्चार—'फिषोऽन्त—' सूत्र से 'किम्' के इकार का तथा उसके स्थान में आदिष्ट 'क्व' के ऋकार का उदात्त स्वर होता है। 'ङि' विभक्ति प्रत्यय का 'अनुदात्तौ सुप्पितौ' सूत्र से अनुदात्त स्वर है। उसके स्थान में आदिष्ट 'अत्' प्रत्यय का एवं पररूप होने पर 'क्व' के अकार का 'तित्स्वरितम्' सूत्र से स्वरित स्वर होता है।

जस् विभक्ति प्रत्यय का स्वर

६५. तिसृभ्यो जसः । ६ । १ । १६६ ।

अन्तो दात्तः। 'ति॒स्रो द्यावः॑ सवि॒तुः'[1] ।

तिसृ—तिसृ शब्द के बाद जस् विभक्ति प्रत्यय का अन्तोदात्त स्वर होता है।

अन्त—तिसृ शब्द के बाद विहित जस् विभक्ति प्रत्यय का अन्त उदात्त स्वर होता है; जैसे—'ति॒स्रः—'[2]क।

टि० (क) 'तिस्र':—'त्रि' शब्द से स्त्रीलिङ्ग प्रथमा बहुवचन में 'स्वौजसमौट्—' सूत्र से जस् (अस्) विभक्ति प्रत्यय होता है (त्रि + अस्)। 'त्रिचतुरो स्त्रियाम्–' सूत्र से 'त्रि' के स्थान में 'तिसृ' आदेश होता है (तिसृ + अस्)। 'ऋतो ङि सर्वनामस्थानयोः' सूत्र से 'ऋ' को 'अर्' गुण प्राप्त है उसको बाधकर 'अचि र ऋतः' सूत्र से 'ऋ' के स्थान में र् आदेश होता है और सकार का रुत्वविसर्ग करने से 'तिस्रः' पद सिद्ध होता है।

स्वर सञ्चार—'त्रि' के इकार का प्रत्यय स्वर से उदात्त स्वर है। 'अनुदात्तौ सुप्पितौ' सूत्र से विभक्ति प्रत्यय का अनुदात्त स्वर है किन्तु प्रकृति प्रत्यय समुदायरूप 'तिस्रः' पद में 'तिसृभ्यो जसः' सूत्र से विभक्ति प्रत्यय का उदात्त स्वर होता है।

तृतीया आदि विभक्ति प्रत्ययों का स्वर

६६. सावेकाचस्तृतीयादिर्विभक्तिः । ६ । १ । १६८ ।

---

१. ऋ० सं० । १ । ३५ । ६ ।

२. 'तीन स्वर्ग हैं इनमें सूर्य के—'।

सावित्ति सप्तमीबहुवचनम्। तत्र य एकाच् ततः परा तृतीयादि-विभक्तिरुदात्ता। 'वाचा विरूप:—'[१]। 'सौ—' किम्? राज्ञेत्यादौ एकाचोऽपि राजशब्दात्परस्य मा भूत्। 'राज्ञोनु ते'[२]। एकाचः किम्? 'विधृते राजनित्वे'[३]। तृतीयादिः किम्? 'न ददर्श वाचम्'[४]।

सावे—सु विभक्ति प्रत्यय परे रहते एकाच् जो शब्द उससे विहित तृतीयादि विभक्तिप्रत्यय उदात्त होते हैं।

सावित्ति—'सौ' पद 'सु' शब्द के सप्तमी बहुवचन का रूप है। वहाँ पर जिस शब्द का (विभक्ति प्रत्यय 'सु' के अतिरिक्त) एक ही अच् शेष रहता हैं, उस शब्द से परे तृतीया आदि विभक्ति प्रत्ययों का उदात्त स्वर होता है; जैसे—'वाचा—'[५क]।

प्रस्तुत सूत्र में 'सौ' पद का ग्रहण क्यों किया गया है? इस पद का ग्रहण सप्तमी बहुवचन से अन्यत्र एकाच् होनेवाले राजन् आदि शब्दों से विहित परवर्त्ती तृतीया आदि विभक्ति प्रत्ययों के उदात्त स्वर के निषेध में लिये है; जैसे—'राज्ञो–[६ख]।'

प्रस्तुत सूत्र में (सौ +) 'एकाचः' पद का ग्रहण क्यों किया गया है? इस पद का ग्रहण सप्तमी बहुवचन में अनेकाच् होनेवाले 'राजन्' आदि शब्दों से विहित विभक्ति प्रत्ययों के उदात्त स्वर के निषेध के लिये है; जैसे—'राजनि—'[७ग]।

प्रस्तुत सूत्र में 'तृतीयादिः' पद का ग्रहण क्यों किया गया है? इस पद का ग्रहण सप्तमी बहुवचन में एकाच् होनेवाले 'वाक्' आदि शब्दों से विहित प्रथमादि-विभक्ति प्रत्ययों के उदात्त स्वर के निषेध के लिये है; जैसे—'वाचम्'[८घ]।

टि० (क) 'वाचा'—'वाच् + टा' (आ) = 'वाचा'। तृतीया एकवचन में निष्पन्न 'वाचा' शब्द के 'वा' के आकार का धातु स्वर से उदात्त स्वर है। 'टा' विभक्ति प्रत्यय के आकार का 'अनुदात्तौ सुप्पितौ' सूत्र से अनुदात्त

१. ऋ० सं० । ८ । ७५ । ६ । तथा तै० सं० । २ । ६ । ११ । २ ।
२. ऋ० सं० । १ । ९१ । ३ । तथा । ९ । ८८ । ८ ।
३. ऋ० सं० । ६ । १ । १३ । तथा तै० ब्रा० । ३ । ६ । १० । ५ ।
४. ऋ० सं० । १० । ७१ । ४ । तथा निरु० । १ । ८ । एवं । १ । २० ।
५. 'वाणी से भद्दा'।
६. 'तुम्हारा राजा'।
७. 'तुझ राजा के पास बहुत धन है'।
८. 'वाणी को नहीं देखा'।

स्वर प्राप्त है किन्तु सप्तमी बहुवचन में 'वाक्' शब्द के 'एकाच्' (वाक्षु) होने के कारण 'सावेकाच्—'सूत्र से उदात्त स्वर होता है।

(ख) 'राज्ञः'—'राजन्' शब्द के पञ्चमी एकवचन में 'स्वौजसमौट्—' सूत्र से 'ङसि' (अस्) विभक्ति प्रत्यय होता है (राजन् + अस्)। 'अल्लोपोनः' सूत्र से राजन् के अकार का लोप होता है (राज् + न् + अस्)। 'स्तोः श्चुना श्चुः' सूत्र से 'न्' को 'ञ्' आदेश होकर तथा प्रकृति प्रत्यय मिलाकर सकार का सत्व विसर्ग करने पर 'राज्ञः' पद सिद्ध होता है।

स्वर सञ्चार—'ञ्नित्यादिर्नित्यम्' सूत्र में 'राजन्' शब्द के 'रा' के आकार का उदात्त स्वर है। 'अनुदात्तौ सुप्पितौ' सूत्र से 'ङसि' विभक्ति प्रत्यय के अकार का अनुदात्त स्वर होता है। इस प्रकार निष्पन्न 'राज्ञः' पद के 'रा' के आकार का उदात्त स्वर है।

(ग) 'राजनि'—'राजन्' शब्द के सप्तमी एकवचन में 'ङि' (इ) विभक्ति प्रत्यय होता है तथा विभक्ति प्रत्यय मिलाने पर 'राजनि' सिद्ध होता है। इस पद में प्रकृति के आकार का उदात्त स्वर होता है।

(घ) 'वाचम्'—'वाच्' शब्द के द्वितीया एकवचन में 'अम्' विभक्ति प्रत्यय होकर प्रकृति प्रत्यय मिलने से 'वाचम्' पद सिद्ध होता है। यहाँ 'वा' के आकार का धातु स्वर से उदात्त स्वर है और 'अम्' विभक्ति प्रत्यय का 'सुप्' होने के कारण अनुदात्त स्वर है।

हलादि विभक्ति प्रत्यय स्वर

६७. षट्त्रिचतुर्भ्यो हलादिः। ६।१।१७९।

एभ्यो हलादिर्विभक्तिरुदात्ता। 'आषड्भिर्हूयमानः'[१]। 'त्रिभिष्ट्वं देव'[२]।

षट्—षट्, त्रि तथा चतुर् शब्दों से विहित हलादि सुप् विभक्ति प्रत्यय का उदात्त स्वर होता है।

एभ्यो—इन शब्दों से विहित हलादि विभक्ति प्रत्यय का उदात्त स्वर होता है; जैसे—'—षड्भिः—'[३]क। 'त्रिभिः—'[४]ख।

१. ऋ० सं०। २। १८। ४।

२. ऋ० सं०। ६। ६७। २६।

३. 'बुलाये जाने पर छः (घोड़ों) के साथ—'।

४. 'हे देव! तुम तीनों (सूर्य, अग्नि तथा जल) के साथ—'।

टि० (क) 'भ्याम्' 'भिस्' तथा 'भ्यस्' प्रत्यय को हलादि विभक्ति प्रत्यय कहते हैं।
(ख) 'षड्भिः'—'षट्' शब्द से तृतीया बहुवचन में 'भिस्' विभक्ति प्रत्यय होता है (षट् + भिस्)। 'झलां जश् झशि' सूत्र से 'ट्' को 'ड्' होकर 'षड्भिः' पद सिद्ध होता है। इस पद में 'षट्' शब्द से विहित हलादि विभक्ति प्रत्यय 'भिस्' के इकार का उदात्त स्वर होता है।
(ग) 'त्रिभिः'—'त्रि + भिस् = त्रिभिः'। इस पद में भी 'षट् त्रि—' सूत्र से 'त्रि' के इकार का उदात्त स्वर होता है।

हलादि विभक्ति प्रत्यय के स्वर का निषेध

६८. न गोश्वन्साववर्णराडङ्क्रुङ्कृद्भ्यः। ६। १। १८५।

एभ्यः प्रागुक्तं न। 'गवां शता'[1]। 'गोभ्यो गातुम्'[2]। 'शुनश्चिच्छेपम्'[3]। सौ प्रथमैकवचने अवर्णान्तात्। 'तेभ्यो द्युम्नम्'[4]। 'तेषां पाहि श्रुधि हवम्'[5]।

न गो—गो, श्वन्, प्रथमा एकवचन में अवर्णान्त (साववर्ण) राट् अङ् क्रुङ् तथा कृत् शब्दों से विहित तृतीया आदि विभक्ति प्रत्ययों का उदात्त स्वर नहीं होता।

एभ्यः—इनसे पूर्व सूत्र निर्देशानुसार विभक्ति प्रत्यय का उदात्त स्वर नहीं होता है; जैसे—'गवां—'[6क]। 'गोभ्यो—'[7ख]। 'शुनः—'[8ग]। प्रथमा एकवचन में अवर्णान्त शब्द जैसे—'तेभ्यो—'[9घ]। 'तेषां—'[10ङ]।

टि० (क) 'गवाम्'—'गो' शब्द से षष्ठी बहुवचन में 'आम्' विभक्ति प्रत्यय होता है और 'एचोऽयवायावः' सूत्र से 'गो' के ओकार को अवादेश होकर 'गवाम्' पद सिद्ध होता है।

---

१. ऋ० सं०। १। १२२। ७।
२. ऋ० सं०। ८। ४५। ३।
३. ऋ० सं०। ५। २। ७।
४. ऋ० सं०। ५। ७६। ७।
५. ऋ० सं०। १। २। १।
६. सौ गाय।
७. 'जल के पास जाने के लिये'।
८. 'शुनः शेप नामक ऋषि को—'।
९. 'उनको धन'।
१०. 'उस सोम रस का पान करो और हमारी स्तुति को सुनो'।

स्वर सञ्चार—इस पद में 'गो' के ओकार का प्रत्यय स्वर से उदात्त स्वर है और उससे विहित 'आय्' विभक्ति प्रत्यय के आकार का सुप्त्वात् अनुदात्त स्वर है। यहाँ 'सावेकाच—' सूत्र से विभक्ति प्रत्यय का उदात्त स्वर प्राप्त है। उसका 'न गोश्वन्—' सूत्र से निषेध होता है।

(ख) 'गोभ्यः'—इस पद में भी 'गो' के ओकार का उदात्त स्वर है। यहाँ भी पूर्ववत् विभक्ति प्रत्यय के उदात्त स्वर का 'न गोश्वन्—' सूत्र से उसका बाध होता है।

(ग) 'शुनः'—'श्वन्' शब्द से षष्ठी एकवचन में 'ङस्' (अस्) विभक्ति प्रत्यय होता है (श्वन् + अस्)। 'श्वयुवमघोनामतद्धिते' सूत्र से 'व्' को उकार होता है (श् + उ + अ + न् + अस्) 'सम्प्रसारणाच्च' सूत्र से उ + अ का पूर्वरूप उ होता है (श् + उ + न + अस्)। प्रकृति प्रत्यय मिलाकर सकार का रुत्व विसर्ग करने से 'शुनः' पद सिद्ध होता है।

स्वर सञ्चार—इस पद में निपातनात् 'शु' के उकार का उदात्त स्वर है और विभक्ति प्रत्यय का अनुदात्त स्वर है। यहाँ भी विभक्ति प्रत्यय के प्राप्त उदात्त स्वर का 'न गोश्वन्—' सूत्र से निषेध होता है।

(घ) 'तेभ्यः'—'तत्' शब्द शब्द से चतुर्थी बहुवचन में 'भ्यस्' विभक्ति प्रत्यय होता है (तत् + भ्यस्)। 'त्यदादीनामः' सूत्र से 'त्' को 'अ' आदेश होता है और 'अतो गुणे' सूत्र से पररूप होता है (त + भ्यस्)। 'बहुवचने झल्येत्' सूत्र से 'त' के अकार को एकार होकर तथा सकार का रुत्व विसर्ग होकर 'तेभ्यः' पद सिद्ध होता है।

स्वर सञ्चार—इस पद में भी पूर्ववत् विभक्ति प्रत्यय के उदात्त स्वर का निषेध होकर प्रकृति स्वर से 'ते' के एकार का उदात्त स्वर है।

(ङ) 'तेषाम्'—'तत्' शब्द से षष्ठी बहुवचन में 'आम्' विभक्ति प्रत्यय होता है (तत् + आम्)। 'त्यदादीनामः' सूत्र से 'त्' को अकार आदेश होता है और 'अतो गुणे' सूत्र से उसका पररूप होता है (त + आम्)। 'आमि सर्वनाम्नः सुट्' सूत्र से 'सुट्' (स्) का आगम होता है

(त + साम्) । 'यदागमास्तद्गुणीभूतास्तद्ग्रहणेन गृह्यन्ते' इस परिभाषा से झलादि बहुवचन सुप् (साम्) प्रत्यय परे रहते 'त' के अकार को 'बहुवचने झल्येत्' सूत्र से एत्व होता है (ते + साम्) । 'आदेशप्रत्यययोः' सूत्र से 'स्' को मूर्धन्य आदेश होकर 'तेषाम्' पद सिद्ध होता है।

स्वर संचार—इस पद में भी पूर्ववत् विभक्ति प्रत्यय के प्राप्त उदात्त स्वर का 'न गोश्वन्—' सूत्र से निषेध होकर प्रकृति स्वर से 'ते' के एकार का उदात्त स्वर होता है।

झलादि विभक्ति प्रत्यय का स्वर

६९. दिवो झल् । ६ । १ । १८३ ।

दिवः परा झलादिर्विभक्तिर्नोदात्ता । 'द्युभिर॒क्तुभिः'[१] । झलिति किं ? 'उपत्वाग्ने दि॒वे दि॑वे'[२] ।

दिवो—दिव् के बाद झलादि विभक्ति प्रत्यय का उदात्त स्वर नहीं होता।

दिवः—दिव् शब्द के बाद विद्यमान झलादि विभक्ति प्रत्यय का उदात्त स्वर नहीं होता; जैसे—'द्युभिः—'[३क] ।

प्रस्तुत सूत्र में 'झल्' पद का ग्रहण क्यों किया गया है ? इस पद का ग्रहण 'द्यु' शब्द के बाद विद्यमान 'भ्याम्' 'भिस्' तथा 'भ्यस्' विभक्ति प्रत्ययों से भिन्न विभक्ति प्रत्ययों के उदात्त स्वर के निषेध के लिये है; जैसे—'—दिवे—'[४ख] ।

टि० (क) 'द्युभिः'—'दिव्' शब्द से तृतीया बहुवचन में 'भिस्' विभक्ति प्रत्यय होता है (दिव् + भिस्) । 'दिव उत्' सूत्र से 'व्' को 'उ' आदेश होता है (दि + उ + भिस्) । 'इको यणचि' सूत्र से 'दि' के इकार को 'य्' यण् होकर तथा सकार का रुत्व विसर्ग होकर 'द्युभिः' पद सिद्ध होता है।

---

१. ऋ० सं० । १ । ३४ । ८ ।
२. ऋ० सं० । १ । १ । । ७ ।, वा० सं० । ३ . २२ ।, तै० सं० । ५ । ६ । २ । तथा साम० । १४ ।
३. 'दिन तथा रात से युक्त—' ।
४. 'हे अग्नि देव तुम्हारे पास प्रतिदिन' ।

स्वर सञ्चार—इस पद में धातु स्वर से 'दि' के इकार का उदात्त स्वर है और विभक्ति प्रत्यय का सुप्त्वात् अनुदात्त स्वर है। यहाँ 'सावेकाच्—' सूत्र से विभक्ति प्रत्यय के प्राप्त उदात्त स्वर का 'दिवो झल्' सूत्र से निषेध होता है।

(ख) 'दिवे'—'दिव्' शब्द से चतुर्थी एकवचन में 'ङे' (ए) विभक्ति प्रत्यय होकर 'दिवे' पद सिद्ध होता है।

स्वर सञ्चार—यहाँ 'सावेकाच्—' सूत्र से एकार का उदात्त स्वर होता है।

लसार्वधातुक प्रत्यय का स्वर

७०. तास्यनुदात्तेन्ङिददुपदेशाल्लसार्वधातुकमनुदात्त—मन्ह्विङोः। ६। १। १८६।

'अस्मात्परं लसार्वधातुकमनुदात्तं स्यात्। तासि—'कर्त्ता'[१]। प्रत्ययस्वरापवादोऽयम्। अनुदात्तेत्—'य आस्ते'[२]। ङितः—'अभिचष्टे ऽनृतेभि'[३]। अदुपदेशात्—'पुरुभुजा चनस्यतम्'[४]। चित्स्वरोऽप्यनेन बाध्यते। 'वर्धमानं स्वेदमे'[५]। तास्यादिभ्यः किम्? 'अभिवृधे गृणीतः'[६]। उपदेशग्रहणान्नेह। 'हतो वृत्राण्यार्या'[७]। लग्रहणं किं? 'कतिह निघ्नाना'। 'सार्वधातुकम्' किम्? 'शिश्ये'। अन्ह्विङोः किं? 'ह्नुते'। 'यदधीते'। विन्दिन्धिखिदिभ्यो नेति वक्तव्यम्[८]। 'इन्धे राजा'[९]। एतश्च अनुदात्तस्य च यत्रेति सूत्रे भाष्ये स्थितम्।

तास्य—लुट् लकार में तास् प्रत्यय, अनुदात्तेत् धातु, ङिदुपदेश धातु और अदुपदेश धातु से विहित लसार्वधातुक प्रत्यय का अनुदात्त स्वर होता है। किन्तु ङिदुपदेश में 'ह्नुङ्' तथा 'इङ्' धातु नहीं होना चाहिये।

१. ऋ० सं०। २। ३४। ६।
२. ऋ० सं०। ७। ५५। ६।
३. ऋ० सं०। ७। २४०। ८।
४. ऋ० सं०। १। ३। १।
५. ऋ० सं०। १। १। ८।
६. ऋ० सं०। ३। ६। १०।
७. ऋ० सं०। ६। ।६०। ६।
८. वा०। ३७ ३०।
९. ऋ० सं०। ७। ८। १।

अस्मात्—इनसे पर वर्त्तमान लसार्वधातुक प्रत्यय का अनुदात्त स्वर होता है; जैसे—

तासि—'कर्त्तो'[१क]। यह प्रत्यय स्वर का अपवाद है। अनुदात्तेत्—'आस्ते'[२ख]। ङितः—'अभिचष्टे—'[३ग]। अदुपदेश—'—चनस्यतम्'[४घ]। इस सूत्र से चित् स्वर का बाध होता है। 'वर्धमानम्—'[५ङ]।

प्रस्तुत सूत्र में 'तास्यादि' शब्दों का ग्रहण क्यों किया गया है? इस शब्द का ग्रहण 'तास्यादि' से भिन्न शब्दों के बाद वर्त्तमान लसार्वधातुक प्रत्यय के अनुदात्त स्वर के निषेध के लिये हैं। जैसे—'—गृणीतः'[६च]।

प्रस्तुत सूत्र में 'उपदेशात्' पद का ग्रहण होने के कारण 'हुतः—'[७छ] पद में लसार्वधातुक प्रत्यय का अनुदात्त स्वर नहीं होता है।

प्रस्तुत सूत्र में 'ल + सार्वधातुकम्' पद का ग्रहण क्यों किया गया है? इस पद का ग्रहण शित् सार्वधातुक संज्ञक प्रत्यय के अनुदात्त के निषेध के लिये हैं; जैसे—'—निघ्नानाः'[८ज]।

प्रस्तुत सूत्र में 'सार्वधातुकम्' पद का ग्रहण क्यों किया गया है? इस पद का ग्रहण लसार्वधातुक प्रत्यय के अनुदात्त स्वर के निषेध के लिये हैं; जैसे—'शिश्ये'[९झ]।

प्रस्तुत सूत्र में 'अन्ह्विङोः' पद का ग्रहण क्यों किया गया है? इस पद का ग्रहण 'ह्नूङ्' तथा 'ईङ्' धातु से विहित 'लसार्वधातुक' प्रत्यय के अनुदात्त स्वर के निषेध के लिये हैं; जैसे—ह्नुते[१०ञ]।—अधीते[११ट]।

'विन्दि' 'इन्धि' तथा 'खिदि' धातुओं से परे विहित लसार्वधातुक प्रत्यय

---

१. 'करने वाला'।
२. 'जो रहता (या बैठा) है।'
३. 'झूठी (बातों वाला) कहता है।'
४. 'लम्बी भुजा वाले तुम दोनों यथेष्ट भोजन करो।'
५. 'अपनी शाला में बढ़ने वाले'।
६. 'समृद्धि के लिये (अग्नि) की स्तुति करते हो—'।
७. 'इन्द्राग्नी के द्वारा उपद्रव नष्ट किये जाते हैं'।
८. 'यहाँ कितनों को मारते हुये'।
९. 'सो गया'।
१०. 'छिपता है'।
११. 'जो पढ़ता है'।

का अनुदात्त स्वर नहीं होता; जैसे—'इन्धे—'[१] ठ। यह स्वर विचार 'अनुदात्तस्य च—[२]' सूत्र के भाष्य में स्पष्ट किया गया है।

टि० (क) 'कर्त्ता'—√'डुकृञ्' (कृ) 'करणे'[३] धातु से 'अनद्यतने लुट्' सूत्र के द्वारा 'लुट्' (ल्) प्रत्यय होता है (कृ + ल्)। 'तिप्तस्झि—' सूत्र से 'ल्' के स्थान में 'तिप्' (ति) प्रत्यय का आदेश होता है (कृ + ति)। 'स्यतासी लृलुटोः' सूत्र से 'ति' से पहले 'तास्' प्रत्यय होता है (कृ + तास् + ति)। 'लुटः प्रथमस्य डारौरसः' सूत्र से 'ति' के स्थान में 'डा' (आ) आदेश होता है (कृ + तास् + आ)। 'टेः' सूत्र से 'तास्' प्रत्यय के 'आस्' का लोप होता है (कृ + त् + आ)। 'आर्धधातुकं शेषः' सूत्र से 'त्' की आर्धधातुक संज्ञा होती है और 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' सूत्र से 'कृ' के ऋकार को 'अर्' गुण होकर 'कर्त्ता' पद सिद्ध होता है।

स्वर सञ्चार—'धातोः' सूत्र से 'कृ' धातु के ऋकार का उदात्त स्वर है। 'डा' प्रत्यय के आकार का 'आद्युदात्तश्च' सूत्र से उदात्त स्वर है। 'तास्' प्रत्यय के 'आस्' का लोप होने से उसका कोई भी स्वर नहीं है। इस प्रकार निष्पन्न 'कर्त्ता' पद में सतिशिष्ट नियम से 'ता' के आकार का उदात्त स्वर प्राप्त है। 'तास्यनु—' सूत्र से उसको बाधकर 'ता' के आकार का अनुदात्त स्वर होता है। परिशेषात् 'क' के अकार का उदात्त स्वर है।

(ख) 'आस्ते'—√'आस' (आस्) 'उपवेशने'[४] धातु से 'वर्तमाने लट्' सूत्र के द्वारा 'लट्' (ल्) प्रत्यय होता है (आस् + ल्)। 'तिप्तस्झि—' सूत्र से 'ल्' से स्थान में 'त' प्रत्यय होता है (आस् + त)। 'टित आत्मनेपदानां टेरे' सूत्र से 'त' के अकार को एकार होकर 'आस्ते' पद सिद्ध होता हैं।

स्वर सञ्चार—'धातोः' सूत्र से 'आस्' धातु के आकार का उदात्त स्वर है। 'आद्युदात्तश्च' सूत्र से 'ते' प्रत्यय के एकार का उदात्त

१. 'राजा (अग्नि देव) प्रदीप्त होते हैं'।
२. पा० सू० । ६ । १ । १६१ ।
३. त० उ० अ० । १४७३ ।
४. अ० आ० अ० । १०२१ ।

स्वर है किन्तु 'आस्' धातु के अनुदात्तेत् होने के कारण उससे विहित 'ते' के एकार का 'तास्यनु—' सूत्र से अनुदात्त स्वर होता है।

(ग) 'अभिचष्टे'—अभि + √'चक्षिङ्' (चक्ष्) 'व्यक्तायां वाचि'[१] धातु से 'वर्तमाने लट्' के द्वारा लट् (ल्) प्रत्यय होता है (चक्ष् + ल)। 'तिप्तस्झि—' सूत्र से ल् के स्थान में 'त' आदेश होता है (चक्ष् + त)। 'स्कोः संयोगाद्योरन्ते च' सूत्र से संयुक्त वर्ण (क् + ष् = क्ष) के आदिभूत 'क' का लोप होता है (चष् + ते)। 'ष्टुना ष्टुः' सूत्र से 'त' को 'ट' होकर 'अभिचष्टे' पद सिद्ध होता है।

स्वर सञ्चार—'चक्ष्' धातु के अकार को 'धातोः' सूत्र से उदात्त स्वर है। 'आद्युदात्तश्च' सूत्र से 'ष्टे' के एकार का उदात्त स्वर है, किन्तु 'चक्ष्' धातु में ङकार की इत्संज्ञा एवं लोप (ङिदुपदेश) होने के कारण 'तास्यनु—' सूत्र से 'ष्टे' के एकार का अनुदात्त स्वर होता है।

(घ) 'चनस्यतम्'—√'चायृ' (चाय्) 'निशामनयोः'[२] धातु के आकार का निर्वचन रीति से ह्रस्व, 'असुन्' (अस्) का तथा नुट् (न्) का आगम होता है। (चय् + न् + अस्)। 'लोपो व्योर्वलि' सूत्र से 'चय्' के यकार का लोप होकर 'चनस्' शब्द बनता है। 'चनस् आत्मानम् इच्छति इति चनस्यति'। यहाँ पर 'सुप आत्मनः क्यच्' सूत्र से 'क्यच्' (य) प्रत्यय होता है (चनस् + अम् + य)। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' सूत्र से 'अम्' विभक्ति प्रत्यय का लोप होकर √'चनस्य' शब्द बनता है। 'सनाद्यन्ता धातवः' सूत्र से उसकी धातु संज्ञा होती है और 'लोट् च' सूत्र से 'लोट्' (ल्) प्रत्यय होता है (चनस्य + ल्)। 'तिप्तस्झि—' सूत्र से ल् के स्थान में 'थस्' आदेश होता है (चनस्य + थस्)। 'तिङ्शित्—' सूत्र से 'थस्' की सार्वधातुक संज्ञा होती है और 'कर्त्तरि शप्' सूत्र से 'शप्' (अ) प्रत्यय होता है और 'अतो गुणे' सूत्र से पररूप होता है (चनस्य + थस्)। 'तस्थस्थमिपां—' सूत्र से 'थस्' के स्थान पर 'तम्' आदेश होकर 'चनस्यतम्' पद सिद्ध होता है।

---

१. अ० आ० अ० । १०१७ ।

२. अ० आ० अ० । १०१७ ।

स्वर सञ्चार—'धातोः' सूत्र से 'चनस्य' शब्द के अन्तिम अकार का उदात्त स्वर है 'अनुदात्तौ सुप्पितौ' सूत्र से विकरण प्रत्यय 'अ' का सर्वानुदात्त स्वर है। 'तम्' में 'त' के अकार का उदात्त स्वर प्राप्त है। उसको बाध कर 'चनस्यतम्' पद में 'त' के अकार का 'तास्यनु—' सूत्र से अनुदात्त स्वर होता है।

(ङ) 'वर्धमानम्'—√'वृधु' (वृध्) 'वर्धने'[1] धातु से 'वर्तमाने लट्' सूत्र के द्वारा 'लट्' (ल्) प्रत्यय होता है (वृध् + लट्)। 'लटः शतृ—' सूत्र से लट् के स्थान में 'शानच्' (आन्) प्रत्यय होता है (वृध् + आन)। 'तिङ्शित्—' सूत्र से 'आन्' की सार्वधातुक संज्ञा होती है और 'कर्त्तरि शप्' सूत्र से 'शप्' (अ) विकरण प्रत्यय होता है (वृध् + अ + आन)। 'आने मुक्' सूत्र से 'मुक्' (म्) का आगम होता है (वृध् + अ + म् + आन्)। 'पुगन्तलघूपधस्य च' सूत्र से 'वृ' के ऋकार को रपर गुण होता है। प्रकृति प्रत्यय मिलाकर विभक्ति कार्य करने पर 'वर्धमानम्' पद सिद्ध होता है।

स्वर सञ्चार—'धातोः' सूत्र से 'वृ' के ऋकार का उदात्त स्वर होता है। पित्वात् विकरण प्रत्यय के अकार का अनुदात्त स्वर है। 'आद्युदात्तश्च' सूत्र से 'आन्' प्रत्यय के आकार का उदात्त स्वर है किन्तु प्रकृति प्रत्यय समुदाय रूप 'वर्धमानम्' पद का 'चितः' सूत्र से अन्तोदात्त स्वर प्राप्त हैं। विकरण प्रत्यय के योग से अदुपदेश होने के कारण 'तास्यनु—' सूत्र से 'आन्' प्रत्यय का सर्वानुदात्त स्वर होता है। परिशेषात् 'व' के अकार का उदात्त स्वर है। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि 'चितः' सूत्र से प्राप्त स्वर विधि का 'तास्यनु—' सूत्र बाधक है।

(च) इस पद में 'त' के अकार का उदात्त स्वर है।

(छ) 'हतः'—√'हन' (हन्) 'हिंसागत्योः'[2] धातु से 'वर्तमाने लट्' सूत्र के द्वारा 'लट्' (ल्) प्रत्यय होता है (हन् + ल्)। 'तिप्तस् झि—' सूत्र से 'ल्' के स्थान में 'तस्' प्रत्यय होता है (हन् + तस्)। 'तिङ्शित्—' सूत्र से 'तस्' प्रत्यय की सार्वधातुक संज्ञा होती है

१. चु० उ० से०। १०७८।
२. अ० प० से०। १०१२।

और 'कर्तरि शप्' सूत्र से 'शप्' विकरण प्रत्यय होता है किन्तु 'अदिप्रभृतिभ्यः शपः' सूत्र से उसका लोप (लुक्) होता है (हन् + तस्)। 'अनुदात्तोपदेश—' सूत्र से 'हन्' धातु के नकार का लोप होकर तथा सकार का रुत्व विसर्ग करने पर 'हतः' पद सिद्धहोता है।

स्वर सञ्चार—'धातोः' सूत्र से धातुगत 'ह' का उदात्त स्वर है। 'आद्युदात्तश्च' सूत्र से 'त' के अकार का उदात्त स्वर है। सति-शिष्ट नियम से 'त' के अकार का उदात्त स्वर होता है।

(ञ) 'निघ्नानाः'—'निघ्न' शब्द से नामधातुत्वात् 'ताच्छील्यवयोवचन-शक्तिषु चानश्' सूत्र से 'चानश्' (आन) प्रत्यय होता है (निघ्न + आन)। सवर्णदीर्घ होकर विभक्ति कार्य करने से 'निघ्नानाः' पद पद सिद्ध होता है। यहाँ छान्दसत्वात् 'मुक्' का आगम नहीं होता है।

स्वर सञ्चार—'धातोः' सूत्र से 'घ्न' के अकार का उदात्त स्वर है। 'आद्युदात्तश्च' सूत्र से 'चानश्' प्रत्यय के आकार का उदात्त स्वर है किन्तु प्रकृति प्रत्यय समुदाय रूप 'निघ्नानाः' पद के अन्त्य आकार का 'चितः' सूत्र से उदात्त स्वर होता है।

(झ) 'शिश्ये'—√'शीङ्' (शी)'स्वप्ने'[1] धातु से 'परोक्षे लिट्' सूत्र के द्वारा 'लिट्' (ल्) प्रत्यय होता है (शी + ल्)। 'तिप्तस्झि—' सूत्र से 'ल्' के स्थान में 'त' आदेश होता है (शी + त)। 'लिट् च' सूत्र से 'त' को आर्धधातुक संज्ञा होती है जिससे 'शप्' विकरण प्रत्यय नहीं होता है। 'लिटि धातोरनभ्यासस्य' सूत्र से 'शी' को द्वित्व होता है (शी + शी + त)। 'पूर्वोऽभ्यासः' सूत्र से प्रथम 'शी' की अभ्यास संज्ञा होती है और 'ह्रस्वः' सूत्र से उसके ईकार को ह्रस्व इकार होता है (शि + शी + त)। 'लिटस्तझयोरेशिरेच्' सूत्र से 'त' के स्थान में 'एश्' (ए) आदेश होता है (शि + शी + ए)। 'एरने-काच्—' सूत्र से 'शी' के ईकार को यण् होकर 'शिश्ये' पद सिद्ध होता है।

स्वर सञ्चार—'धातोः' सूत्र से 'शी' धातु के ईकार का उदात्त स्वर है और 'आद्युदात्तश्च' सूत्र से धातु से विहित 'त' तथा उसके स्थान में विहित एकार का उदात्त स्वर होता है।

---

१. ब०आ० अ० । १०३३ ।

(ञ) 'ह्नुते' एवं' अधीते'—√ 'ह्नुङ् 'स्तवने'[1] धातु से 'वर्तमाने लट्' सूत्रके द्वारा लट् (ल्) प्रत्यय होता है तथा उसके स्थान में 'तिप्तस्झि—' सूत्र से 'त' आदेश करके एवं 'टित आत्मनेपदानां—' सूत्र से एत्व करके 'ह्नुते' पद सिद्ध होता है।

इसी प्रकार अधि उपपद √'ईङ्' (ई) 'अध्ययने'[2] धातु से भी 'अधीते' पद सिद्ध होता है। यहाँ प्रत्यय स्वर से 'ते' के एकार का उदात्त स्वर है।

(ट) 'इन्धे'—√ 'ञिइन्धी' (इन्ध्) 'दीप्तौ'[3] धातु से 'लट्' (ल्) प्रत्यय होता है (इन्ध् + ल्)। 'तिप्तस्झि—' सूत्र से 'ल्' के स्थान में 'त' आदेश होता है (इन्ध् + त)। 'तिङ्शित्—' सूत्र से 'त' की सार्वधातुक संज्ञा होती है तथा शप् विकरण प्रत्यय होता है। किन्तु 'रुधादिभ्यः श्नम्' सूत्र से उसके स्थान में 'श्नम्' (न) आदेश होता है (इन् + न् + ध् + त)। 'टित आत्मनेपदानां' सूत्र से 'त' के अकार को एकार होता है (इन् + न + ध् + ते)। 'श्नसोरल्लोपः' सूत्र से 'श्न' के अकार का लोप होता है (इन् + न् + ध् + ते)। 'श्नान्नलोपः' सूत्र से द्वितीय 'न्' का लोप होता है (इन् + ध् + ते)। 'झषस्तथोर्धोऽधः' सूत्र से 'त' को 'ध' होता है (इन् + ध + धे)। 'झलां जश् झशि' सूत्र से प्रथम 'ध' को 'द' होता है (इन + द् + धे)। 'झरो झरि सवर्णे' सूत्र से 'द्' का लोप होकर 'इन्धे' पद की सिद्धि होता है।

स्वर सञ्चार—'धातोः' सूत्र से धातु के इकार का उदात्त स्वर है और 'आद्युदात्तश्च' सूत्र से 'न्धे' के एकार का उदात्त स्वर है। अतः सतिशिष्ट नियम से 'धे' के एकार का उदात्त स्वर होता है।

—: ० :—

१. अ० आ० अ०। १०८२।
२. दि० आ० अ०। ११४३।
३. रु० आ० स०। १४४८।

सप्तम प्रकाश

समास के स्वर का विचार

समास वाले पद का सामान्य स्वर

७१. समासस्य । ६ । १ । २२३ ।

अन्त उदात्तः स्यात् । 'यज्ञश्रियम्'[1] ।

समा—समास के अन्त अच् का उदात्त स्वर होता है ।

अन्तः—समस्त पद के अन्त अच् का उदात्त स्वर होता है; जैसे—'यज्ञश्रियम्'[2] (क) ।

टि० (क) यज्ञश्रियम्—'यज्ञस्य + श्रियम्=यज्ञश्रियम्' । यहाँ 'षष्ठी' सूत्र से समास होता है (यज्ञ + ङस् + श्री + अम्) । 'सुपो धातु—' सूत्र से विभक्ति प्रत्ययों का लोप होकर 'यज्ञश्री' शब्द बनता है । उसकी प्रातिपदिक संज्ञा करके द्वितीया एकवचन में 'स्वौजसमौट्—' सूत्र से 'अम्' विभक्ति प्रत्यय होता है (यज्ञश्री + अम्) । 'इको यणचि' सूत्र से 'श्री' के ईकार को यण् प्राप्त है उसको 'अचिश्नु—' सूत्र से बाधकर एवं 'इयङ्' (इय्) आदेश होकर प्रकृति प्रत्यय मिलाने से 'यज्ञ-श्रियम्' पद सिद्ध होता है ।

स्वर सञ्चार—यहाँ प्रत्यय स्वर से 'यज्ञ' शब्द के 'ज्ञ' के अकार का तथा धातु स्वर से 'श्री' के ईकार का उदात्त स्वर है किन्तु समास होने के कारण 'श्री' के ईकार का 'समासस्य' सूत्र से उदात्त स्वर होता है ।

पूर्वपद का प्रकृति स्वर

७२. बहुव्रीहौ प्रकृत्या पूर्वपदम् । ६ । २ । १ ।

---

१. ऋ० सं० । १ ४ । ७ । तथा अथर्व० । २० । ६८ । ७ ।

२. 'यज्ञ की शोभा' ।

उदात्तस्वरितयोगी पूर्वपदं प्रकृत्या स्यात्। 'सत्यश्चित्रश्रवस्तमः'[१]। उदात्तेत्यादि किं? सुमपादः।

बहु—बहुव्रीहि समास में पूर्वपद का प्रकृतिस्वर होता है।

उदा—उदात्त एवं स्वरित स्वर से युक्त पूर्वपद का बहुव्रीहि समास में प्रकृति स्वर होता है; जैसे—'—चित्रश्रव—'[२क]।

प्रस्तुत सूत्र की वृत्ति में 'उदात्तस्वरितयोगी' पद को क्यों जोड़ा गया है? सर्वानुदात्त पूर्वपद होने पर समासान्तत्वात् सर्वानुदात्त स्वर के निषेध के लिये है; जैसे—'समपादः'[३ख]।

टि० (क) चित्रश्रव.—'श्रूयते इति श्रवः=कीर्तिः, चित्रं श्रवो यस्य स चित्रश्रवा'। यहाँ 'अनेकमन्यपदार्थे' सूत्र से बहुव्रीहि समास होता है (चित्र + सु + श्रवस् + सु)। 'सुपोधातु—' सूत्र से विभक्ति प्रत्यय का लोप होकर उसकी प्रातिपदिक संज्ञा करके विभक्ति कार्य करने से 'चित्रश्रवा' पद सिद्ध होता है।

चित्र—√'चिञ्' (चि) 'चयने'[४] धातु से 'अमिचिमिदि—' सूत्र से 'क्त्र' (त्र) प्रत्यय होकर 'चित्र' शब्द सिद्ध होता है।

स्वर सञ्चार—बहुव्रीहि समास वाले इस पद में 'समासस्य' सूत्र से 'व' के अकार का उदात्त स्वर प्राप्त है उसको बाधकर 'बहुव्रीहौ—' सूत्र से पूर्वपद का प्रकृति स्वर होता है। प्रत्यय स्वर से 'चित्र' शब्द के 'त्र' के अकार का उदात्त स्वर है।

(ख) 'समपादः'—'समौ पादौ यस्य सः समपादः' इस पद में भी बहुव्रीहि समास होता है और 'समासस्य' सूत्र से 'द' के अकार का उदात्त स्वर होता है।

७३. पत्यावैश्वर्ये। ६। २। १८।

'दमूना गृहपतिर्दमे'[५]।

पत्या—तत्पुरुष समास में पति शब्द के उत्तरपदभूत रहते तथा ऐश्वर्य अर्थ गम्यमान रहते पूर्वपद का प्रकृति स्वर होता है।

---

१. ऋ० सं०। १। १। ५।
२. 'सच्चा तथा सर्वश्रेष्ठ कीर्ति वाला'।
३. 'बराबर पैर वाला'।
४. स्वा० उ० अ०। १२५१।
५. ऋ० सं०। १। ६०। ४।

जैसे—'—गृहपतिः—'[1]क ।

टि० (क) 'गृहपतिः'—(क) 'गृहस्य पतिः = गृहपतिः' इस पद में 'षष्ठी' सूत्र समास होता है। (ख) √'ग्रह' 'उपादाने'[2] धातु से 'गेहे कः' सूत्र से 'क' (अ) प्रत्यय होता है (ग्रह + अ)। 'अतो गुणे' सूत्र से पररूप एकादेश होता है (ग्रह)। 'ग्रहिज्या—' सूत्र से 'ग्र' के स्थान 'गृ' सम्प्रसारण होकर 'गृह' शब्द बनता है।

स्वर सञ्चार—इस पद में 'पत्यावैश्वर्ये' सूत्र से 'गृह' शब्द का प्रकृति स्वर होता है। 'आद्युदात्तश्च' सूत्र से 'गृह' शब्द के 'ह' के अकार का प्रत्यय स्वर से उदात्त स्वर होता है।

७४. तवै चान्तश्च युगपत् । ६ । २ । ५१ ।

तवैप्रत्ययान्तस्याऽन्त उदात्तो गतिश्चानन्तरं प्रकृत्या, युगपच्चेत्तदुभयं स्यात् । 'अन्वेतवा उ'[3] ।

तवै—'तवै' प्रत्ययान्त शब्द का अन्तोदात्त स्वर होता है और पूर्वपद का प्रकृति स्वर होता है।

तवैप्र—तवै प्रत्ययान्त शब्द का अन्तोदात्त[4] स्वर होता है और पूर्वपदभूत अव्यवहित गति संज्ञक पद का प्रकृति स्वर होता है। ये दोनों कार्य साथ होते हैं; जैसे—'अन्वेतुवै—'[5]क ।

टि० (क) 'अन्वेतुवै'— 'अनु पश्चात् एतवै = अन्वेतवै' पद में 'अव्ययं विभक्ति—' सूत्र से समास होता है तथा 'इको यणचि' सूत्र से 'यण्' होकर 'अन्वेतवै' पद सिद्ध होता है।

स्वर सञ्चार—'तवै चान्तश्च—' सूत्र से 'अनु' शब्द का प्रकृतिस्वर होता है और 'एतवै' पद के 'वै' के ऐकार का उदात्त स्वर होता है। 'उपसर्गाश्चाभिवर्जम्' सूत्र से 'अनु' के अकार का उदात्त स्वर है।

---

१. 'दमन करने की इच्छा से गृहरक्षक होकर यज्ञशाला में—'।

२. क्र्या० उ० से० १५३४ ।

३. ऋ० सं० । ७ । ४४ । ५ । तथा वा० सं० । ८ । ३५ ।

४. 'यद्यप्युदात्तग्रहणं दुर्लभं तथापि गतिः प्रकृत्या भवतीत्युक्ते उदात्तो बुद्धिमारोहतीति स एवान्तस्य भवतीति भावः ।'—शेखर

५. 'प्रतिदिन आने के लिये—'।

पूर्वपद के आद्युदात्त स्वर का अधिकार

७५. आदिरुदात्तः । ६ । २ । ६४ ।

अधिकारोऽयम् ।

आदि—समास में पूर्वपद का आदि उदात्त स्वर होता है ।

अधि—यह अधिकार सूत्र है ।

पूर्वपद का आद्युदात्त स्वर

७६. युक्ते च । ६ । २ । ६६ ।

युक्तवाचिनि समासे पूर्वमाद्युदात्तम् । 'गोवल्लवः' । कर्तव्ये तत्परः युक्तः ।

युक्ते—युक्त अर्थ में समास में पूर्वपद का आद्युदात्त स्वर होता है ।

युक्त—युक्त अर्थ गम्यमान रहते समास में पूर्वपद का आद्युदात्त स्वर होता है; जैसे—'गोवल्लवः'[1]क ।

कर्तव्य में तत्पर को 'युक्त' कहते हैं ।

टि० (क) 'गोवल्लवः'—'गवाम् + वल्लवः = गोवल्लवः' इस पद में 'षष्ठी' सूत्र से समास होता है ।

स्वर सञ्चार—'युक्ते च' सूत्र से पूर्वपदभूत 'गो' शब्द का आद्युदात्त स्वर होता है ।

७७. विभाषाऽध्यक्षे । ६ । २ । ६७ ।

'गवाध्यक्षः' । 'गवाध्यक्षः' ।

विभा—युक्त अर्थ गम्यमान रहते उत्तरपदभूत अध्यक्ष शब्द के साथ समस्त पूर्वपद का विकल्प से उदात्त स्वर होता है ।

गवा—(उदाहरण); जैसे—'गवाध्यक्षः' । 'गवाध्यक्षः'[2] ।

टि० (क) 'गवाध्यक्षः'—'गवाम् + अध्यक्षः = गवाध्यक्षः' इस पद में 'षष्ठी' सूत्र से समास होता है ।

---

१. 'गाय की देखभाल करने वाला' (चरवाह) ।
२. 'गायों का निरीक्षक' ।

स्वर सञ्चार—'विभाषाध्यक्षे' सूत्र से 'ग' के अकार का विकल्प से उदात्त स्वर होता है। विकल्प पक्ष में 'समासस्य' सूत्र से 'क्ष' के अकार का उदात्त स्वर होता है।

आद्युदात्तप्रकरणे दिवोदासादीनां छन्दस्युपसंख्यानम्। वा। ३८४०।

'दिवोदासाय महिं दाशुषे'[१]।

आद्यु—समास स्वर के इस आद्युदात्त प्रकरण में दिवोदासादिगण का भी उपसंख्यान करके उस गण में पढ़े गये शब्दों का आद्युदात्त स्वर होता है।

दिवो—जैसे—'दिवोदासाय—'[२क]।

टि० (क) इस पद में 'दि' के इकार का उदात्त स्वर होता है।

पूर्वपद के अन्तोदात्त स्वर का अधिकार

७८. अन्तः। ६। २। ९२।

अधिकारोऽयम्। प्रागुत्तरपदादिग्रहणात्।

अन्तः—समास में पूर्वपद का अन्तोदात्त स्वर होता है।

अधि—यह अधिकार सूत्र है। इसका अधिकार 'उत्तरपदादिः' सूत्र तक जाता है।

पूर्वपद का अन्तोदात्त स्वर

७९. पुरे प्राचाम्। ६। २। ९९।

'शिवदत्तपुरम्'। 'नान्दिपुरम्'। 'प्राचाम्' किम्? 'शिवपुरम्'।

पुरे—'पुर' शब्द के उत्तरपद रहते तथा 'पूर्व देश में स्थित पुर' अर्थ गम्यमान रहते पूर्वपद का अन्तोदात्त स्वर होता है।

शिव—(उदाहरण); जैसे—'शिवदत्तपुरम्'[३]। 'नान्दिपुरम्'[४]।

प्रस्तुत सूत्र में 'प्राचाम्' पद का ग्रहण क्यों किया गया है? इस पद का

---

७. ऋ० सं०। १। १३०। ७।

८. 'हव्य देने वाले यजमान दिवोदास को—'।

१. 'प्राच्य भारत का एक गाँव'।

२. 'नन्दी ग्राम'।

ग्रहण पूर्व से भिन्न दिशा में वर्तमान पुर वाचक पूर्वपद के अन्तोदात्त स्वर के निषेध के लिये है; जैसे—'शि॒व॒पु॑रम्' [१] ।

टि० (क) 'शि॒व॒द॒त्तपु॑रम्'—'शिवदत्तस्य पुरम् = शिवदत्तपुरम्' इस पद में षष्ठी सूत्र से समास होता है।

स्वर सञ्चार—'पुरे प्राचाम्' सूत्र से पूर्वपदभूत 'शिवदत्त' शब्द का अन्त्तोदात्त स्वर होता है।

(ख) न॒न्दिपु॑रम्—इस पद में भी पूर्ववत् 'न्दि' के इकार का उदात्त स्वर होता है।

(ग) 'शि॒व॒पु॒रम्'—इस पद में षष्ठी समास होता है। प्राच्य भारत का गाँव वाचक न होने से 'समासस्य' सूत्र से अन्तोदात्त स्वर होता है।

८०. बहुव्रीहौ विश्वं संज्ञायाम् । ६ । २ । १०६ ।

बहुव्रीहौ विश्वशब्दः पूर्वपदभूतः संज्ञायामन्तोदात्तः स्यात् । पूर्वपद—प्रकृतिस्वरेण प्राप्तस्याद्युदात्तस्यापवादः । 'वि॒श्वक॑र्मणा वि॒श्वदे॑व्यावता' [२] । 'आवि॒श्वदे॑वं॒ सत्प॑तिम्' [३] । 'बहुव्रीहौ' किम् ? 'विश्वे च ते देवाश्च > वि॒श्वे॒दे॒वाः' । 'संज्ञायाम्' किम् ? 'विश्व॑देवः' [४] ।

बहु—बहुव्रीहि समास में संज्ञा अर्थ गम्यमान रहते पूर्वपदभूत 'विश्व' शब्द का अन्तोदात्त स्वर होता है।

बहु—बहुव्रीहि समास में संज्ञा अर्थ में प्रयुक्त पूर्वपदभूत 'विश्व' शब्द अन्तोदात्त होता है। पूर्वपदभूत शब्द का प्रकृति स्वर से प्राप्त उदात्त स्वर का यह सूत्र अपवाद है; जैसे ।'वि॒श्वक॑र्मणा—' [५क] । '—वि॒श्वदे॑वम्—' [६ख] ।

प्रस्तुत सूत्र में 'बहुव्रीहौ' पद का ग्रहण क्यों किया गया है ? इस पद का ग्रहण द्वन्द्व समास में भी संज्ञा अर्थ गम्यमान रहते पूर्वपदभूत 'विश्व' शब्द के अन्तोदात्त स्वर के निषेध के लिये है; जैसे—'वि॒श्वे॒दे॒वाः' [७ग] ।

---

१. 'उदीच्य भारत का एक गाँव' ।
२. ऋ० सं० । १० । १७० । ४ ।
३. ऋ० सं० । ५ । ८२ । ७ । तथा तै० सं० । ३ । ४ । ११ । २ ।
४. ऋ० सं० । ६ । ६७ । ६ ।, । ८ । ९८ । २ ।, । ९ । ६२ । ३ । तथा । ६ । १०३ । ४ ।
५. 'रक्षा करने वाले विश्वकर्मा के साथ विश्वदेवी' ।
६. 'श्रेष्ठ विश्वदेव स्वामी तक' ।
७. 'विश्वदेव लोग' ।

प्रस्तुत सूत्र में 'संज्ञायाम्' पद का ग्रहण क्यों किया गया है ? इस पद का ग्रहण बहुव्रीहि समास में सर्वनाम अर्थ गम्यमान रहते पूर्वपदभूत 'विश्व' शब्द के अन्तोदात्त स्वर के निषेध के लिये है; जैसे—'विश्वदेवः'[१]घ ।

टि० (क) 'विश्वकर्मणा'—'विश्वं कर्म यस्य स विश्वकर्मा, तेन विश्वकर्मणा'। इस पद में 'अनेकमन्य—' सूत्र से बहुव्रीहि समास होता है।

स्वर सञ्चार—यहाँ 'बहुव्रीहौ प्रकृत्या—' सूत्र से पूर्वपद का प्रकृति स्वर प्राप्त है उसका 'बहुव्रीहौ विश्वं—' सूत्र से बाध करके अन्तोदात्त स्वर होता है।

(ख) 'विश्वदेवम्'—'विश्वः देवो यस्य स विश्वदेवः, तं विश्वदेवम्' इस पद में भी 'अनेकमन्य—' सूत्र से समास होता है।

स्वर सञ्चार—'बहुव्रीहौ विश्वं—' सूत्र से पूर्वपद का अन्तोदात्त स्वर होता है।

(ग) 'विश्वदेवाः'—'विश्वे च ते देवाश्च विश्वदेवाः' इस पद में 'विशेषणं विशेष्येण बहुलम्' सूत्र से समास होता है।

स्वर सञ्चार—'समासस्य' सूत्र में इस पद में अन्तोदात्त स्वर होता है।

(घ) 'विश्वदेवः'—' विश्वः देवो यस्य स विश्वदेवः' पद में 'अनेकमन्य—' सूत्र से समास होता है।

स्वर सञ्चार—'बहुव्रीहौ प्रकृत्या—' सूत्र से इस पद में पूर्वपदभूत 'विश्व'[२] शब्द का प्रकृति स्वर होता है। 'ञ्नित्यादिर्नित्यम्' सूत्र से 'वि' के इकार का उदात्त स्वर होता है।

उत्तरपद के आद्युदात्त स्वर का अधिकार

८१. उत्तरपदादिः । ६ । २ । १११ ।

उत्तरपदाधिकार आपादान्तम्। आद्यधिकारस्तु 'प्रकृत्या भगालम्' इत्यवधिकः।

---

१. 'विश्वदेव'।
२. विश्व—√विश (विश्) 'उपवेशने' (तु० प० अ० १४२४)+क्विन्।

उत्तर—उत्तरपद का आदि उदात्त होता है।

उत्तर—'उत्तरपद' का अधिकार इस पाद के अन्त तक है और 'आदि' पद का अधिकार 'प्रकृत्या भगालम्' सूत्र तक है।

उत्तर पद का आद्युदात्त स्वर

८२. नञो जरमरमित्रमृताः। ६। २। ११६।

नञः परा एते आदि उदात्ता बहुव्रीहौ। 'ता मे जराय्व जरम्'[1]। 'अमित्रं मर्दय'[2]। 'श्रवो देवेष्वमृतम्'[3]। नञः किं? 'ब्राह्मणमित्रः'। जेति किं? 'अशत्रुः'।

नञो—बहुव्रीहि समास में 'नञ्' शब्द के पूर्वपद रहते उत्तरपदभूत जर, मर, मित्र तथा मृत शब्दों का आदि उदात्त स्वर होता है।

नञः—नञ् (अ) से पर इन जर मर आदि का बहुव्रीहि समास में आदि उदात्त स्वर होता है; जैसे—'–अजरम्'[4क]। 'अमित्रम्[5कमु]'। '—अमृतम्[6क]'।

प्रस्तुत सूत्र में 'नञः' पद का ग्रहण क्यों किया गया है? इस पद का ग्रहण बहुव्रीहि समास में नञ् शब्द से अन्य शब्द के पूर्वपद रहते उत्तर पदभूत जर, मर, मित्र तथा मृत शब्दों के आदि उदात्त स्वर के निषेध के लिये है; जैसे—"ब्राह्मणमित्रः"[7]।

प्रस्तुत सूत्र में 'जरमरमित्रमृताः' पद का ग्रहण क्यों किया गया है? इस पद का ग्रहण बहुव्रीहि समास में नञ् शब्द के पूर्वपद रहते उत्तर पदभूत 'जर' आदि से भिन्न शब्दों के आदि उदात्त स्वर के निषेध के लिये है; जैसे—अशत्रुः[8]।

टि० (क) अजरम्—'न विद्यमाना जरा यस्य स अजरः तम् अजरम्'। इस पद में 'नञोऽस्त्यर्थानां—' वार्तिक से 'विद्यमान' शब्द का लोप होता

---

१. ऋ० सं०। १०। १०६। ६।
२. ऋ० सं०। ८। ७५। १०।
३. ऋ० सं०। ३। ५३। १५।
४. 'वे दोनों अश्विनी कुमार मेरे जरायुज शरीर को अमर बनावें'।
५. 'शत्रु को नष्ट करो'।
६. 'देवताओं की कीर्ति अमृत है'।
७. 'ब्राह्मण मित्र वाला'।
८. 'जिसको शत्रु न हो'।

हैं और 'अ' का 'जरा' शब्द के साथ समास होता है (अजरा)। 'गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य' 'इस सूत्र के 'रा' के अकार का ह्रस्व होकर प्रातिपदिक संज्ञा करके विभक्तिकार्य करने से 'अजरम्' पद सिद्ध होता है।

स्वर सञ्चार—यहाँ 'नञो जर—' सूत्र से उत्तरपदभूत 'जर' शब्द का आदि उदात्त स्वर होता है।

(ख) 'अमित्रम्' तथा 'अमृतम्'—'अविद्यमान मित्रं यस्य सः अमित्रः तम् अमित्रम्' तथा 'अविद्यमानो मृतः यत्र तत् अमृतम्' 'इनमें भी पूर्ववत् 'नञोऽस्त्यर्थानाम्—' वार्तिक से उत्तर पद का लोप एवं समास होता है।

स्वर सञ्चार—पूर्ववत् 'नञोजर—' सूत्र 'मि' तथा 'मृ' के अचों का उदात्त स्वर होता है।

(ग) 'ब्राह्मणमित्रः'—'ब्राह्मणः मित्रं यस्य स ब्राह्मणमित्रः'। इस पद में 'अनेकमन्य—' सूत्र से समास होता है और 'बहुव्रीहौ प्रकृत्या—' सूत्र पूर्वपद का प्रकृति स्वर होता है।

स्वर सञ्चार का उदात्त स्वर है।

(घ) 'अशत्रुः'—'अविद्यमानः शत्रुर्यस्य स अशत्रुः' इस पद में 'नञोऽस्त्यर्थानां—' वार्तिक से बहुव्रीहि समास होता है।

स्वर सञ्चार—उत्तरपदभूत 'शत्रु' के उकार का अन्तोदात्त स्वर होता है।

उत्तरपद के अन्तोदात्त स्वर का अधिकार

८३. अन्तः। ६। २। १४३।

अधिकारोऽयम्

अन्तः—समास में उत्तरपद का अन्तोदात्त स्वर होता है।

अधि—यह अधिकार सूत्र है।

उत्तरपद का अन्तोदात्त स्वर

८४. थाऽथघञ्क्ताऽजवित्रकाणाम्। ६। २। १४४।

थ अथ घञ् क्त अच् अप् इत्र क एतदन्तानां गतिकारकोपपदात्

परेषामन्त उदात्तः । 'प्रभृथस्यायोः'[१] । 'आवसथः' । घञ्–प्रभेदः । क्त–'धर्ता वज्री पुरुष्टुतः'[२] । पुरुषु–बहुप्रदेशेषु स्तुत इति विग्रहः । अच्–'प्रक्षयः' । अप्–प्रलवः । इत्र–प्रलवित्रम् । क–गोवृषः । मूलविभुजादित्वात्कः । गतिकारकोपपदादित्येव । 'सुस्तुतं भवता' ।

था—थ, अथ, घञ्, क्त, अच्, अप्, इत्र तथा क प्रत्ययान्त शब्दों का अन्तोदात्त स्वर होता है ।

थ अथ—समास में गतिसंज्ञक कारकपद तथा उपपद के पूर्वपद रहते उत्तरपदभूत थ, अथ, घञ् क्त, अच्, अप्, इत्र तथा क प्रत्ययान्त शब्दों का अन्तोदात्त स्वर होता है; जैसे—'–प्रभृथस्य—'[३क] । 'आवसथः'[४क] । 'प्रभेदः'[५क] । '—पुरुष्टुतः[६क]' । 'प्रक्षयः'[७क] । 'प्रलवः'[८क] । 'प्रलवित्रम्'[९क] । 'गोवृषः'[१०क] ।

इस सूत्र से होने वाली स्वरविधि गति अथवा कारक पूर्वपद रहते ही विहित होती है; जैसे—'सुस्तुतम्—'[११ख] ।

टि० (क) 'प्रकृष्टं विभर्त्ति' = 'प्रभृथः' ।
'आवसन्ति यस्मिन्' = 'आवसथः' ।
'प्रकर्षेण भिनत्ति' = 'प्रभेदः' ।
'प्रकृष्टं क्षीयते' = 'प्रक्षयः' ।
'प्रकर्षेण लुनाति' = 'प्रलवः' ।
'प्रकृष्टं लूयते अनेन तत्' = 'प्रलवित्रम्' ।
इन पदों में 'कुगतिप्रादयः' सूत्र से समास होता है ।

---

१. ऋ० सं० । ५ । ४१ । १९ ।
२. ऋ० सं० । १ । ११ । ४ ।
३. 'यजमान के यज्ञ की' ।
४. 'निवास स्थान' ।
५. 'अधिक भेद' ।
६. 'पालन करने वाले वज्र धारण करने वाले तथा लोगों से स्तुति किये गये' ।
७. 'उत्तम स्थान' ।
८. 'काटना' ।
९. 'चाकू' ।
१०. 'साड़' ।
११. 'आपने खूब स्तुति की' ।

'पुरुषु स्तुतः' = 'पुरुष्टुतः' । इस पद में योग विभक्त 'सप्तमी—' सूत्र से समास होता है।

'गाम् वर्षति इति = गोवृषः', इस पद में 'उपपदमतिङ्' सूत्र से समास होता है।

स्वर सञ्चार—उपर्युक्त सभी पदों में 'थाऽथ—' सूत्र से उत्तरपदभूत शब्दों का अन्तोदात्त स्वर होता है।

(ख) सुष्ठु स्तुतम् = सुस्तुम्, इस पद में 'कुगतिप्रादयः' सूत्र से समास होता है।

स्वर सञ्चार—'तत्पुरुषे तुल्यार्थ—' सूत्र से 'सु' के उकार का उदात्त स्वर होता है।

८५. वनं समासे । ६ । २ । १७८ ।

समासमात्रे उपसर्गादुत्तरं वनमन्तोदात्तम् । 'तस्येदि॒मे प्र॑व॒णे' ।

वनं—समास में 'वन' शब्द के उत्तरपद रहते उसका अन्तोदात्त स्वर होता है।

समास—समास मात्र में उपसर्ग के बाद वर्तमान उत्तर पदभूत 'वन' शब्द का अन्तोदात्त स्वर होता है; जैसे—'—प्र॑व॒णे'[1]क।

टि० (क) 'प्रवणे'—'प्रकृष्टं वनं 'यस्य तत् प्रवणम् तस्मिन् प्रवणे' । इस पद में बहुव्रीहि समास होता है। 'प्रनिरन्तः' सूत्र से 'न' को 'ण' होता है।

स्वर सञ्चार—'वनं समासे' सूत्र से उत्तरपदभूत 'वनं' शब्द का अन्तोदात्त स्वर होता है।

उत्तरपद के प्रकृति स्वर का अधिकार

८६. प्रकृत्या भगालम् । ६ । २ । १३७ ।

भगालवाच्युत्तरपदं तत्पुरुषे प्रकृत्या । कु॒म्भी॒भ॒गाल॑म् । कु॒म्भी॒न॒दाल॑म् । कु॒म्भी॒क॒पाल॑म् । मध्योदात्ता एते । प्रकृत्येत्यधिकृतं 'अन्तः' इति यावत् ।

प्रकृ—भगाल वाचक उत्तरपद का प्रकृति स्वर होता है।

---

१. 'उसके इस उत्तम वन में'।

भगाल—तत्पुरुष समास में भगाल वाचक उत्तर पद का प्रकृति स्वर होता है। जैसे—'कुम्भीभगालम्'[१क]। 'कुम्भीनदालम्'[१क]। 'कुम्भीकपालम्'[१ख]। इन सभी पदों में उत्तर पद का मध्य उदात्त स्वर है।

इस सूत्र से 'अन्तः'[२] सूत्र तक प्रकृत्या पद का अधिकार है।

टि० (क) 'कुम्भीभगालम्'—'कुम्भ्याः भगालम् = कुम्भीभगालम्'। यहाँ 'षष्ठी' सूत्र से समास होता है।

स्वर सञ्चार—उत्तरपदभूत भगाल शब्द का 'प्रकृत्या भगालम्' सूत्र से प्रकृतिस्वर होता है। 'लघावन्ते—' सूत्र से 'भगाल' शब्द के 'गा' के आकार का उदात्त स्वर है।

(ख) पूर्ववत् 'कुम्भीनदालम्' एवं 'कुम्भीकपालम्' पद में षष्ठी समास एवं उत्तरपद का प्रकृति स्वर से मध्योदात्त स्वर होता है।

देवता द्वन्द्व समास में स्वर

८७. देवताद्वन्द्वे च। ६।२।१४१।

उभे युगपद् प्रकृत्या स्तः। 'आ य इन्द्रावरुणौ'[३]। इन्द्राबृहस्पती वयम्[४]। देवता किं? 'प्लक्षन्यग्रोधौ'। द्वन्द्वे किं? 'अग्निष्टोमः'[५]।

देव—देवताद्वन्द्व समास में पूर्व तथा उत्तर पद दोनों का प्रकृति स्वर होता है।

उभे—देवताद्वन्द्व समास में दोनों पदों का साथ साथ प्रकृति स्वर होता है; जैसे—'—इन्द्रावरुणौ'[६क]। 'इन्द्राबृहस्पती'[७ख]।

प्रस्तुत सूत्र में 'देवता' पद का ग्रहण क्यों किया गया है? इस पद का ग्रहण देवता से भिन्न वाचक द्वन्द्व समास में भी पूर्व तथा उत्तरपदभूत शब्दों के प्रकृति स्वर के निषेध के लिये है; जैसे—'प्लक्षन्यग्रोधौ'[८ग]।

---

१. घड़े का आधा टुकड़ा।
२. पा० सू०। ६। २। १४३।
३. ऋ० सं०। ६। ६। १।
४. ऋ० सं०। ४। ४। ९५।
५. ऋ० सं०। ११। ६। ७।
६. 'हे इन्द्र! तथा वरुण जो यह—'।
७. 'हम लोग इन्द्र तथा बृहस्पति को'।
८. 'पाकड़ और बरगद'।

प्रस्तुत सूत्र में 'द्वन्द्वे' पद का ग्रहण क्यों किया गया है? इस पद का ग्रहण देवतावाचक द्वन्द्व से भिन्न समास में भी पूर्व तथा उत्तर पदभूत शब्दों के एक साथ प्राप्त प्रकृति स्वर के निषेध के लिये है; जैसे—'अग्निष्टोमः'[१]घ।

टि० (क) 'इन्द्रावरुणौ'—'इन्द्रश्च वरुणश्च इति=इन्द्रावरुणौ'। इस पद में 'चार्थे द्वन्द्वः' सूत्र से समास होता है। 'देवताद्वन्द्वे च' सूत्र से उत्तर पद परे रहते 'आनङ्' (आ) प्रत्यय होकर विभक्ति कार्य करने से 'इन्द्रावरुणौ' पद सिद्ध होता है।

इस पद में 'इन्द्र'—√'इदि' 'परमैश्वर्ये'[२] धातु से 'ऋजेन्द्र—' सूत्र से 'रन्' प्रत्यय होता है (इद् + रन्)। 'इदितो—' सूत्र से 'नुम्' (न्) होकर 'इन्द्र' शब्द बनता है।

'वरुण'—'व्रीयते वृणोति वा वरुणः' √'वृञ्' 'वरणे'[३] धातु से 'कृवृदारिभ्य उनन्' सूत्र से 'उनन्' प्रत्यय होकर 'वरुण' शब्द बनता है।

स्वर सञ्चार—'देवताद्वन्द्वे च' सूत्र से दोनों पदों का प्रकृति स्वर होता है। इन्द्र तथा वरुण शब्द 'ञ्नित्यादिर्नित्यम्' सूत्र से ञित्वात् आदि उदात्त है। इस प्रकार इस पद में इकार तथा 'व' के अकार का उदात्त स्वर है।

(ख) 'इन्द्राबृहस्पती'—'इन्द्रश्च बृहस्पतिश्च इति इन्द्राबृहस्पती'। इस पद में भी पूर्ववत् समास, आनङ् (आ) होता है। यहाँ 'बृहस्पति—' 'बृहतां पतिः बृहस्पतिः' इस पद 'षष्ठी' समास होता है। और 'तद्-बृहतोः—' सूत्र से 'सुट्' का आगम तथा 'त्' का लोप कर 'बृहस्पति' शब्द बनता है। इस पद में 'बृहत्' शब्द का आद्युदात्त स्वर का निपातन होता है और 'पति' शब्द प्रत्यय स्वर से अन्तोदात्त है।

स्वर सञ्चार—'देवताद्वन्द्वे च' सूत्र से दोनों पदों का प्रकृति स्वर होता है।

---

१. 'यज्ञ विशेष'।
२. भ्वा० प० से०। ६३।
३. स्वा० उ० से०। १२५५।

(ग) 'प्लक्षन्यग्रोधौ'—'प्लक्षश्च न्यग्रोधश्च इति प्लक्षन्यग्रोधौ'। इस पद में 'चार्थे द्वन्द्वः' सूत्र से समास होता है 'समासस्य' सूत्र से अन्तोदात्त स्वर होता है।

(घ) 'अग्निष्टोमः'—'अग्नेः स्तोमः = अग्निष्टोमः'। इस पद में 'षष्ठी' सूत्र से समास होता है। 'अग्नेस्तुत—' सूत्र से 'स्तो' को ष्टुत्व होता है।
स्वर सञ्चार—'समासस्य' सूत्र से अन्तोदात्त स्वर होता है।

समासस्वर विधि की अनियमिततायें

परादिश्च परान्तश्च पूर्वान्तश्चापि दृश्यते।
पूर्वादयश्च दृश्यन्ते व्यत्ययो बहुलं यतः॥

परादिः—'तुविजाता उरुक्षया'[1]। परान्तः—'नियेन मुष्टिहत्यया'[2]। 'यस्त्रिचक्रः'[3]। पूर्वान्तः—'विश्वायुर्धेहि'।

परा—यहाँ समास प्रकरण में परादि परान्त, पूर्वान्त तथा पूर्वादि का उदात्त स्वर होता है। इस प्रकार व्यत्यय से बाहुलकात समास में स्वर विधि की प्रवृत्ति होती है।

परादि—(उदाहरण); जैसे परादि का—'—उरुक्षया'[४क]। परान्त का—'—मुष्टिहत्यया'[५ख]। '—त्रिचक्रः'[६ग]। पूर्वान्त का —'विश्वायुऽ—'[७घ]।
टि० (क) 'उरुक्षया'—'ऊरूणां क्षयः = ऊरुक्षयः तौ उरुक्षया'। यही 'षष्ठी' सूत्र से समास होता है।

स्वर सञ्चार—'समासस्य' सूत्र से इस पद का अन्तोदात्त स्वर प्राप्त है, उसका बाहुलकत्वात् बाध करके उत्तरपद का आदि उदात्त स्वर होता है।

---

१. ऋ० सं०। १। २। ६।
२. ऋ० सं०। १। ८। २।
३. ऋ० सं०। १। १८३। १।
४. 'बहुतों के उपकार करने के लिये उत्पन्न'।
५. 'जिस धन से मुक्कों की मार से'।
६. 'जो तीन पहिये वाला है'।
७. 'सबको आयु दो'।

(ख) 'मुष्टिहत्यया'—'मुष्ट्या हननं मुष्टिहत्या तथा मुष्टिहत्यया'। इस पद में 'तृतीया—' सूत्र से समास होता है।

उत्तर पद में √'हन्' (हन्) 'हिंसागत्योः' धातु से सुबन्त उपपद रहते 'हनस्त च' सूत्र से 'क्यप्' (य) प्रत्यय, 'न्' के स्थान में 'त्' आदेश तथा 'टाप्' (आ) होकर 'मुष्टिहत्या' शब्द सिद्ध होता है।

स्वर सञ्चार— इस पद में 'गति कारक—' सूत्र से उत्तर पद का प्रकृति स्वर प्राप्त है उसका बाध करके बाहुलकात् अन्तोदात्त स्वर होता है।

(ग) 'त्रिचक्रः'—'त्रीणि चक्राणि यस्मिन् स त्रिचक्रः'। इस पद में बहुव्रीहि समास होता है।

स्वर सञ्चार—पूर्वपद का प्रकृति स्वर प्राप्त होता है बाहुलकात् उसे बाध कर उत्तरपद का अन्तोदात्त स्वर होता है।

(घ) 'विश्वायुः'—'विश्वं आयुः यस्मिन् स विश्वायुः' इस पद में बहुव्रीहि समास होता है।

स्वर सञ्चार—बहुव्रीहि समास होने के कारण 'बहुव्रीहौ प्रकृत्या पूर्वपदम्' सूत्र से पूर्व पद का प्रकृति स्वर होता है। 'ञ्नित्यादिर्नित्यम्' सूत्र से 'विश्व' शब्द (विश् + क्वन्) नित् होने के कारण आद्युदात्त प्राप्त है किन्तु बाहुलकात् पूर्वपद का अन्तोदात्त स्वर होता है।

—: ० :—

अष्टम प्रकाश

तिङन्त से सम्बन्धित स्वर का विचार

तिङन्त पद का सर्वानुदात्त स्वर

८८. तिङ्ङतिङः । ८ । १ । २८ ।

अतिङन्तात्परं तिङन्तं निहन्यते । 'अ॒ग्निमी॑ळे'[1] ।

तिङ्—अतिङन्त के वाद तिङन्त का सर्वानुदात्त स्वर होता है ।

अति—अतिङन्त के वाद तिङन्त पद का निघात होता है; जैसे—'ई॑ळे'[2] क।

टि० (क) प्रत्यय स्वर से 'अग्निम्' पद का अन्तोदात्त स्वर है और 'ईळे' तिङन्त पद के 'ळे' के एकार का भी प्रत्यय स्वर से उदात्त स्वर प्राप्त है इन दोनों पदों का एक वाक्य में प्रयोग होने के कारण अतिङन्त 'अग्निम्' पद के वाद वर्तमान 'ईळे' तिङन्त पद का 'तिङ्ङतिङः' सूत्र से सर्वानुदात्त स्वर होता है ।

निपातों से युक्त तिङन्त पद का स्वर

८९. निपातैर्यद्यदिहन्तकुविन्नेच्चेचण्कच्चिद्यत्रयुक्तम् । ८ । १ । ३० ।

एतैर्निपातैर्युक्तं न निहन्यन्ते । 'यद॑ग्ने॒ स्याम॒हं त्वम्'[3] । 'यु॒वा यदि॑ कृथः'[4] । 'कु॒विद॑ङ्ग—आस॑न्'[5] । 'अचि॑त्तिभिश्चकृ॒मा कच्चि॒त्'[6] । 'पु॒त्रासो॒ यत्र॑ पि॒तरो॒ भव॑न्ति'[7] ।

---

१. ऋ० सं० । १ । १ । १ ।
२. 'मैं अग्नि की स्तुति करता हूँ' ।
३. ऋ० सं० । ८ । ४४ । २३ ।
४. ऋ० सं० । ५ । ७४ । ५ ।
५. ऋ० सं० । ७ । ६१ । १ ।
६. ऋ० सं० । ४ । १२ । ४ ।
७. ऋ० सं० । १ । ८६ । ९ ।

निपा—यत्, यदि, हन्त, कुवित्, नेत्, चेत्, चण, कच्चित् और यत्र इन निपात पदों युक्त तिङन्त क्रिया पद का सर्वानुदात्त स्वर नहीं होता है।

एतै—इन निपातों से युक्त तिङन्त पद का निघात नहीं होता; जैसे—'—यत्—स्याम्—'[१क]। '—यदिं कृथः'[२ख]। 'कुवित्—आसंन्'[३ग]। '—चकृमा कच्चित्'[४घ]। '—यत्रं—भवंन्ति'[५ङ]।

टि० (क) 'स्याम्'—√'अस' (अस्) 'भुवि'[६] धातु से विधिलिङ् उत्तम पुरुष एकवचन में (ल्) के स्थान में 'तिसस्झि—' सूत्र से 'मिप्' प्रत्यय होता है (अस् + मिप्)। 'तस्थस्थ—' सूत्र से 'मिप्' (मि) प्रत्यय के स्थान में 'अम्' आदेश होता है (अस् + अम्)। 'यासुट्-परस्मै—' सूत्र से उदात्त तथा ङित् 'यासुट्' (यास्) का आगम होता है (अस् + यास् + अम्)। 'लिङः सलोपोऽनन्त्यस्य' सूत्र से 'यास्' के सकार का लोप होता है (अस् + या + अम्)। 'श्नसो-रल्लोपः' सूत्र से धातु के अकार का लोप होता है (स् + या + अम्)। 'या' के 'आ' का 'अम्' के अकार के साथ दीर्घ एकादेश होकर 'स्याम्' पद सिद्ध होता है।

स्वर सञ्चार—'यत्' पद के योग में 'निपातै—' सूत्र से 'स्याम' पद के प्राप्त निघात स्वर का निषेध होता है। प्रकृति स्वर से 'स्या' के आकार का उदात्त स्वर है।

(ख) 'कृथः'—√'डुकृञ्' (कृ) 'करणे'[७] धातु से लट् लकार मध्यम पुरुष द्विवचन में 'थस्' प्रत्यय होता है (कृ + थस्)। छान्दसत्वात् 'तनादिकृञ्भ्यः उः' सूत्र से विहित 'उ' विकरण प्रत्यय का लोप होकर तथा 'सकार' का रुत्वविसर्ग होकर 'कृथः' पद सिद्ध होता है।

---

१. 'हे अग्नि! यदि मैं (धनवान) हो जाऊँ'।
२. 'जब तुम दोनों करते हो'।
३. 'अच्छी तरह……थे'।
४. 'हे अग्नि ! यदि हमने अज्ञान से कोई पाप या अपराध किया हो'।
५. 'जहाँ पुत्र हमारे रक्षक होते हैं'।
६. अ० प० से०। १०६५।
७. त० उ० अ०। १४७२।

स्वर सञ्चार—'यदि' पद के योग में 'निपातै—' सूत्र से 'कृथः' पद के प्राप्त निघात स्वर का निषेध होता है। प्रत्यय स्वर से 'थ' के अकार का उदात्त स्वर है।

(ग) 'आसन्'—√'अस' (अस्) 'भुवि'[1] धातु से 'लङ्' (ल्) लकार प्रथम पुरुष बहुवचन में 'तिप्तस्झि—' सूत्र से 'झि' प्रत्यय होता है (अस् + झि)। 'कर्तरि शप्' सूत्र से 'शप्' विकरण प्रत्यय होता है और उसका 'अदिप्रभृतिभ्यः शपः' सूत्र से लोप (लुक्) होता है। 'झोऽन्तः' सूत्र से 'झ्' को अन्त् आदेश होता है। (अस् + अन्ति)। 'आडजादीनाम्' सूत्र से उदात्त 'आट्' (आ) का आगम होता है (आ + अस् + अन्ति)। 'श्नसोरल्लोपः' सूत्र से धातु के अकार का लोप होता है (आ + स् + अन्ति)। 'इतश्च' सूत्र से 'न्ति' के इकार का लोप होता है (आ + स् + अन्त्)। 'संयोगान्तस्य लोपः' सूत्र से 'त्' का लोप होकर 'आसन्' पद सिद्ध होता है।

स्वर सञ्चार—'कुवित्' निपात के योग में 'निपातै—' सूत्र से 'आसन्' पद में प्राप्त निघात स्वर का निषेध होता है। प्रकृति स्वर से आकार का उदात्त स्वर है।

(घ) 'चकृम'—√'डुकृञ्' (कृ) 'करणे'[2] धातु से परोक्षभूत उत्तम पुरुष बहुवचन में 'परोक्षे लिट्' सूत्र से 'लिट्' (ल्) प्रत्यय होता है (कृ + ल्)। तिप्तस्झि—' सूत्र से 'ल्' के स्थान में मस् आदेश होता है (कृ + मस्)। 'परस्मैपदानां—' सूत्र से 'मस्' के स्थान में 'म' आदेश होता है (कृ + म्)। 'लिटि धातो—' सूत्र से 'कृ' को द्वित्व होता है (कृ + कृ + म)। 'पूर्वोऽभ्यासः' सूत्र से प्रथम 'कृ' की अभ्यास संज्ञा होती है और 'उरत्' सूत्र से ऋकार को 'अर्' आदेश होता है (कर् + कृ + म)। 'हलादि शेषः' सूत्र से 'र्' का लोप होता है (क + कृ + म)। 'कुहोश्चुः' सूत्र से 'क्' को 'च्' होकर 'चकृम' पद सिद्ध होता है।

स्वर सञ्चार—'कच्चित्' इस निपात पद के योग में 'निपातै—' सूत्र से 'चकृम' पद के प्राप्त निघात स्वर का निषेध होता है। प्रत्यय स्वर से 'म' के अकार का उदात्त स्वर है।

---

१. अ० प० से० । १०६५ ।

२. उ० उ० अ० । १४७२ ।

(ङ) 'भवन्ति'—√भू 'सत्तायाम्'[1] धातु से 'वर्तमाने लट्' सूत्र के द्वारा लट् (ल्) प्रत्यय होता है (भू + ल्)। 'तिप्तस्झि—' सूत्र से 'ल्' के स्थान में 'झ' प्रत्यय का आदेश होता है (भू + झि)। 'तिङ्शित्–' सूत्र 'झि' की सार्वधातुक संज्ञा होती है और 'कर्तरि शप्' सूत्र 'शप्' (अ) विकरण प्रत्यय होता है (भू + अ + झि)। 'झोऽन्तः' सूत्र से 'झ्' को 'अन्त्' आदेश होता है (भू + अ + अन्ति)। 'अतो गुणे' सूत्र से विकरण प्रत्यय के अकार का पररूप होता है (भू + अन्ति)। 'सार्वधातुका—' सूत्र से 'भू' के ऊकार को 'ओ' गुण होकर तथा 'एचोऽयवायावः' सूत्र से अवादेश करके 'भवन्ति' पद सिद्ध होता है।

स्वर सञ्चार—'यत्र' निपात पद के योग में 'भवन्ति' क्रियापद के प्राप्त निघात स्वर का 'निपातै—' सूत्र से निषेध होता है। धातु स्वर से 'भ' के अकार का उदात्त स्वर होता है।

'हि' पद से युक्त एक तिङन्त पद का स्वर

९०. हि च। ८। १। ३४।

हि युक्तं तिङन्तं नानुदात्तम्। 'आ हिष्मा याति'[2]। 'आ हि रुहतम्'[3]।

हि च—अनिच्छा विरुद्ध (अप्रतिलोम) अर्थ गम्यमान रहते 'हि' पद से युक्त तिङन्त क्रिया पद का सर्वानुदात्त स्वर नहीं होता है।

हि यु—'हि' से युक्त तिङन्त पद का अनुदात्त स्वर नहीं होता है; जैसे—'—हि—याति'[४क]। '—हि रुहतम्'[५ख]।

टि० (क) 'याति'—√'या' 'प्रापणे'[6] धातु से वर्तमान काल 'लट्' (ल्) लकार प्रथम पुरुष एकवचन में 'तिप्तस्झि—' सूत्र से 'तिप्' (ति) प्रत्यय होकर तथा 'कर्तरि शप्' सूत्र से विहित शप् विकरण प्रत्यय का

---

१. भ्वा० प० से०। १।
२. ऋ० सं०। ४। २९। २।
३. ऋ० सं०। ८। २२। ९।
४. 'आवे'।
५. 'आप दोनों रथ पर चढ़ें'।
६. अ० प० अ०। १०४९।

'अदिप्रभृतिभ्यः शपः' सूत्र से लोप (लुक्) होकर 'याति' पद सिद्ध होता है।

स्वर सञ्चार—इस उदाहरण में 'हि' पद का योग रहते 'याति' पद में प्राप्त निघात स्वर का 'हि च' सूत्र से निषेध होता है। प्रकृति स्वर से 'याति' में 'या' के आकार का उदात्त स्वर होता है।

(ख) रुहतम्—√रुह (रुह्) 'बीजजन्मनि प्रादुर्भावे च'[1] धातु से 'लोट् च' सूत्र के द्वारा 'लोट्' (ल्) प्रत्यय होता है (रुह् + ल्)। मध्यम पुरुष द्विवचन में 'तिप्तस्झि—' सूत्र से 'थस्' प्रत्यय होता है (रुह् + थस्)। 'कर्तरि शप्' सूत्र से 'शप्' (अ) विकरण प्रत्यय होता है (रुह् + अ + थस्)। 'तस्थस्थमिपां—' सूत्र 'थस्' के स्थान में 'तम्' आदेश होकर 'रुहतम्' पद सिद्ध होता है।

स्वर सञ्चार—इस पद में भी 'हि च' सूत्र से 'रुहतम्' क्रिया पद का प्रकृति स्वर होता है। यहाँ 'तास्यनु—' सूत्र अदुपदेश होने के कारण 'तम्' प्रत्यय का अनुदात्त स्वर होता है। इस प्रकार परिशेषात् धातु स्वर से 'रु' के उकार का उदात्त स्वर है।

'हि' पद से युक्त अनेक तिङन्त पदों का स्वर

९१. छन्दस्यनेकमपि साकाङ्क्षम्। ८। १। ३५।

हीत्यनेन युक्तं साकांक्षमनेकमपि नानुदात्तम्। 'अनृतं हि मत्तो वदति पाप्मा चैनं युनाति'। तिङन्त द्वयमपि न निहन्यते।

छन्द—वेद में 'हि' पद से युक्त अनेक साकाङ्क्ष क्रिया पदों के प्राप्त अनुदात्त स्वर का निषेध होता है।

हीत्य—'हि' इस पद से युक्त साकाङ्क्ष अनेक क्रिया पदों का अनुदात्त स्वर नहीं होता है; जैसे—'—हि—वदति—युनाति'[२क]। इस उदाहरण में दोनों ही तिङन्त पदों का निघात नहीं होता है।

टि० (क) 'वदति'—√वद (वद्) 'व्यक्तायां वाचि'[3] धातु से वर्तमान काल प्रथम पुरुष एकवचन में 'तिप्' (ति) तथा 'शप्' (अ) प्रत्यय

१. भ्वा० प० अ०। ८५९।
२. 'चूँकि मतवाला असत्य बोलता है इसलिये उसे पाप लगता है'।
३. भ्वा० प० से०। १००६।

होकर 'वदति' पद सिद्ध होता है। 'युनाति'—√युञ् (युज्) 'बन्धने'[1] धातु से वर्त्तमान काल प्रथम पुरुष एकवचन में 'तिप्' (ति) प्रत्यय तथा 'क्र्यादिभ्यः श्ना' सूत्र से 'श्ना' (ना) विकरण प्रत्यय होकर 'युनाति' पद सिद्ध होता है।

स्वर सञ्चार—इन दोनों पदों में प्राप्त सर्वानुदात्त स्वर का 'छन्दस्य—' सूत्र से निषेध होता है।

'यावत्' एवं 'यथा' पद से युक्त तिङन्त पद का स्वर

९२. यावद्यथाभ्याम्। ८। १। ३७।

आभ्यां युक्तं तिङन्तं नानुदात्तम्। 'यथा॑ चि॒त्कण्व॒माव॑तम्'[2]।

याव—'यावत्' तथा 'यथा' पद से युक्त तिङन्त पद का अनुदात्त स्वर नहीं होता है।

आभ्यां—इनसे युक्त तिङन्त पद का अनुदात्त स्वर नहीं होता; जैसे— 'यथा॑—अव॑तम्'[3क]।

टि० (क) अव॑तम्—√अव (अव्) 'रक्षणगतिकान्तिप्रीतितृप्त्यवगमप्रवेशश्रवणस्वाम्यर्थयाचनक्रियेच्छादीप्त्यवाप्त्यालिङ्गनहिंसादानभागवृद्धिषु'[4] धातु से 'लोट्' लकार मध्यम पुरुष द्विवचन में 'तिप्तस्झि—' सूत्र से 'थस्' प्रत्यय होता है (अव् + थस्)। 'तस्थस्थ—' सूत्र से 'थस्' के स्थान में 'तम्' आदेश होता है (अव् + तम्)। 'कर्तरि शप्' सूत्र से 'शप्' (अ) विकरण प्रत्यय होकर 'अवतम्' पद सिद्ध होता है।

स्वर सञ्चार—यहाँ 'यथा' पद के योग में 'यावद्यथाभ्याम्' सूत्र से प्राप्त निघात स्वर का निषेध होता है। 'तास्यनु—' सूत्र से अदुपदेश 'तम्' प्रत्यय का अनुदात्त स्वर होता है और पित्वात् 'व' के अकार का भी अनुदात्त स्वर होता है। परिशेषात् धातु स्वर से अकार का उदात्त स्वर है।

---

१. क्र्या० उ० अ०। १४७९।
२. ऋ० सं०। ८। ५। २५।
३. 'जिस तरह कण्व की रक्षा करो'।
४. भ्वा० प० से०। ६००।

'तु', 'पश्य', 'पश्यत' तथा 'अह' पदों के योग में तिङन्त पदों का स्वर

९३. तुपश्यपश्यताहैः पूजायाम् । ८ । १ । ३९ ।

एभिर्युक्तं तिङन्तं न निहन्यते पूजायाम्। 'आदहं स्वधामनु पुनर्गर्भत्वमेरिरे'[१] ।

तुप—पूजा अर्थ गम्यमान रहते तु, पश्य, पश्यत तथा अह पदों के योग में तिङन्त क्रियापद में प्राप्त निघात स्वर का निषेध होता है।

एभि—इनसे युक्त तिङन्त पद का पूजा अर्थ में निघात नहीं होता है; जैसे—'—अहं—एरिरे'[२]क ।

टि० (क) एरिरे—आ + √इर (इर्) 'गतौ कम्पने च'[३] धातु से लिट् लकार प्रथम पुरुष बहुवचन में 'तिप्तस्झि—' सूत्र 'झ' प्रत्यय होता है (आ + इर् + झ)। 'लिटस्तझयोरेशिरेच्' सूत्र से 'झ' के स्थान पर 'इरेच्' (इरे) प्रत्यय होता है (आ + इर् + इरे)। गुण होकर प्रकृति प्रत्यय मिलाने से 'एरिरे' पद सिद्ध होता है।

स्वर सञ्चार—यहाँ 'अह' पद के योग में 'एरिरे' क्रिया पद में प्राप्त निघात स्वर का 'तुपश्य—' सूत्र से निषेध होता है। प्रत्यय स्वर से 'रे' के एकार का 'चितः' सूत्र के द्वारा अन्तोदात्त स्वर होता है।

'अहो' पद के योग में तिङन्त क्रिया पद का स्वर

९४. अहो च । ८ । १ । ४० ।

एतद्योगे नानुदात्तं पूजायाम्। 'अहो' देवदत्तः पचति शोभनम्' ।

अहो—पूजा अर्थ गम्यमान रहते 'अहो' निपात पद से युक्त तिङन्त क्रिया पद के निघात स्वर का निषेध होता है।

---

१. ऋ० सं० । १ । ६ । ४ ।

२. '(मरुद्‌गण ने) वर्षा के बाद पुनः अन्न उत्पन्न करने के लिये मेघ को प्रेरित किया'।

३. अ० आ० से० । १०१८ ।

एत—इस (अहो) पद के योग में 'पूजा' अर्थ में अनुदात्त स्वर नहीं होता है; जैसे—'अहो—पचति—'[१]क।

टि० (क) 'अहो देवदत्तः पचति शोभनम्' इस वाक्य में पूजा अर्थ गम्यमान रहते 'अहो' पद के योग में 'पचति' क्रिया पद का सर्वानुदात्त स्वर नहीं होता है। धातु स्वर से 'धातोः' सूत्र के द्वारा 'प' के अकार का उदात्त स्वर होता है।

९५. शेषे विभाषा। ८।१।४१।

अहो इत्यनेन युक्तं तिङन्तं वाऽनुदात्तम् अपूजायाम्। 'अहो कटं करिष्यति'।

शेषे—पूजा से अन्य विस्मय आदि अर्थों में 'अहो' पद के योग में विकल्प से अनुदात्त स्वर का निषेध होता है।

अहो—'अहो' इस पद से युक्त तिङन्त पद का पूजा से भिन्न अर्थ में विकल्प से अनुदात्त स्वर होता है; जैसे—'अहो—करिष्यति'[२]क।

टि० (क) 'अहो कटं करिष्यति' इस वाक्य में विस्मय अर्थ में 'अहो' पद का प्रयोग होने के कारण 'शेषे विभाषा' सूत्र से विकल्प से अनुदात्त स्वर का निषेध होता है। प्रत्यय स्वर से 'ष्य' के अकार का उदात्त स्वर होता है।

विकल्प पक्ष में 'तिङ्ङतिङः' सूत्र से सर्वानुदात्त स्वर होता है।

'यत्', 'हि' तथा 'तु' से युक्त तिङन्त क्रिया पद का स्वर

९६. यद्धितुपरं छन्दसि। ८।१।५६।

तिङन्तं नानुदात्तम्। 'उदसृजो यदङ्गिरः'[३]। 'उशन्ति हि'[४]। 'आख्यास्यामि तु ते'। 'निपातैर्यत्—' इति 'हि च' इति 'तुपश्य—' इति च सिद्धे नियमार्थमिदम्। एतैरेव परभूतैर्योगे नान्यैरिति। 'जाये-स्वारोहावेहि'। एहीति गत्यर्थलोटा युक्तस्य लोडन्तस्य निघातो भवति।

---

१. 'हर्ष की बात है कि देवदत्त अच्छी तरह पकाता है'।
२. 'अरे! वह चटाई बनायेगा'।
३. ऋ० सं०। २।२३।१८।
४. ऋ० सं०। १।२।४।

यद्धि—वेद में 'यत्', 'हि' तथा 'तु' पद परे रहते तिङन्त क्रिया पद के प्राप्त निघात स्वर का निपेध होता है।

तिङन्तम्—तिङन्त का अनुदात्त स्वर नहीं होता है; जैसे—'—असृजो यत्'[१क]। 'उशन्ति हि'[२ख]। '—ख्यास्यामि तु—'[३ग]।

इन उदाहरणों में 'निपातैर्य—' सूत्र से, 'हि च' सूत्र से, और 'तुपश्य—' सूत्र से स्वर निर्धारण सिद्ध है किन्तु नियम के लिये इस सूत्र का प्रणयन किया गया है, जिससे 'यत्', 'हि' तथा 'तु' परे रहते तिङन्त क्रिया पद के निघात स्वर का निषेध होता है। अन्य पदों के/परे रहते निघात स्वर का निषेध नहीं होता; जैसे—'—आरोहाव आ—'[४घ]।

टि० (क) असृजः—√ सृज (सृज्) 'विसर्गे'[५] धातु से लङ् लकार मध्यम पुरुष एकवचन में 'तिप्तस्झि—' सूत्र से 'सिप्' (सि) प्रत्यय होता है (सृज् + सि)। 'तुदादिभ्यः शः' सूत्र से श (अ)। विकरण प्रत्यय होता है (सृज + अ + सि)। 'लुङ्लङ्लृङ्—' सूत्र से उदात्त 'अट्' (अ) का आगम होता है (अ + सृज् + अ + सि)। 'इतश्च' सूत्र से 'सि' के इकार का लोप होकर तथा सकार का रुत्व-विसर्ग होकर 'असृजः' पद सिद्ध होता है।

स्वर सञ्चार—यहाँ 'यत्' पद के योग में 'यद्धितु—' सूत्र से क्रिया पद में प्राप्त निघात स्वर का निषेध होता है। आगम कृत 'अट्' के उदात्त अकार का उदात्त स्वर ही रहता है।

(ख) उशन्ति—√ वश (वश्) 'कान्तौ'[६] धातु से लट् लकार प्रथम पुरुष बहुवचन में 'तिप्तस्झि—' सूत्र से 'झि' प्रत्यय होता है (वश् + झि)। 'झोऽन्तः' सूत्र से 'झ्' को 'अन्त्' आदेश होता है (वश् + अन्त् + इ)। 'ग्रहिज्या—' सूत्र से 'व्' को 'उ' सम्प्रसारण होता है और 'सम्प्रसारणाच्च' सूत्र से पूर्वरूप होकर 'उशन्ति' पद सिद्ध होता है।

---

१. 'हे अंगिरा! तुमने जो गायों के समूह को त्यागा'।
२. 'क्योंकि (सोम) तुम दोनों को चाहते हैं'।
३. 'तुमसे कहूँगा'।
४. 'श्रीमती जी, आइये, हम दोनों स्वर्ग चलें'।
५. तु० प० अ० । १४१४ ।
६. अ० प० से० । १०८० ।

स्वर सञ्चार—यहाँ परवर्ती 'हि' पद के योग में 'उशन्ति' पद में प्राप्त निघात स्वर का 'यद्धितु—' सूत्र से निषेध होता है। 'आद्युदात्तश्च' सूत्र के द्वारा प्रत्यय स्वर से 'श' के अकार का उदात्त स्वर होता हैं।

(ग) ख्यास्या॑मि—√ख्या 'प्रकथने'[1] धातु से ऌट् लकार उत्तम पुरुष एकवचन में 'तिप्तस्झि—' सूत्र से 'मिप्' (मि) प्रत्यय होता है (ख्या + मि)। 'स्यतासी ऌलुटोः' सूत्र से 'स्य' विकरण प्रत्यय होता है (ख्या + स्य + मि)। 'अतो दीर्घो यञि' सूत्र से 'स्य' के अकार को दीर्घ होकर 'ख्यास्यामि' पद सिद्ध होता है।

स्वर सञ्चार—यहाँ 'तु' पद के योग में 'ख्यास्यामि' पद में प्राप्त निघात स्वर का निषेध होता है। धातु स्वर से 'ख्या' के आकार का उदात्त स्वर हैं।

(घ) 'रो॑हाव'—नियमन के कारण 'रोहाव' पद में निघात स्वर का निषेध नहीं होता है अतः 'तिङ्ङतिङः' सूत्र से उसका निघात स्वर होता है।

'च' आदि के लोप में तिङन्त पद का स्वर

९७. चादिलोपे विभाषा। ८। १। ६३।

चवाऽहैवानां लोपे प्रथमा तिङ्विभक्तिर्नानुदात्ता। च लोपे '—इन्द्रं॑-वाजे॑षु नोव'[2]। 'शुक्ला व्रीहयो भवन्ति'। 'श्वेता गा आज्याय दुहन्ति'। वा लोपे—'व्रीहिभिर्यजे॑त, यवै॑र्यजे॑त'।

चादि—'च' आदि के लोप में विकल्प से प्रथम तिङन्त पद के अनुदात्त स्वर का निषेध होता है।

चवा—'च', 'वा', 'ह', 'अह' तथा 'एव' पदों के लोप होने पर विकल्प से प्रथम तिङ् विभक्त्यन्त पद के निघात स्वर का निषेध होता है; जैसे—'—अव'[3क]। '—भवन्ति[4ख]। '—दुहन्ति'[5ग]। '—यजेत—'[6घ]।

---

१. अ० प० अ०। १०६०।
२. ऋ० सं०। १। ७। ४। तै० सं०। १। ५। ८। २। तथा अ० सं० २०। ७०। १०।
३. 'इन्द्र हमारी तथा घोड़ों की रक्षा करें'।
४. 'धान सफेद होता है'।
५. 'घी के लिये सफेद गाय दुहता है'।
६. 'धान से या अन्न से यज्ञ करना चाहिये'।

टि० (क) अव—√अव (अव्) 'रक्षणे'[1] धातु से लोट् लकार मध्यम पुरुष एकवचन में 'तिप्तस्झि—' सूत्र से 'सिप्' (सि) प्रत्यय होता है (अव् + सि)। 'कर्तरि शप्' सूत्र से शप् (अ) विकरण प्रत्यय होता है (अव् + अ + सि)। 'सेर्ह्यपिच्च' सूत्र से 'सि' को 'हि' तथा 'अतो हेः' सूत्र से 'हि' का लोप होकर 'अव' पद सिद्ध होता है।

स्वर सञ्चार—यहाँ 'च' का लोप होने के कारण 'अव' पद में प्राप्त निघात स्वर का 'चादिलोपे विभाषा' सूत्र से वैकल्पिक निषेध होता है। इस पद में वैकल्पिक निघात निषेध के कारण 'तिङ्ङतिङः' सूत्र से निघात होता है।

(ख) भवन्ति—√भू 'सत्तायाम्'[2] धातु से 'भवन्ति' पद सिद्ध होता है।[3]

स्वर सञ्चार—यहाँ 'अह' पद का लोप होने के कारण 'भवन्ति' पद में प्राप्त निघात स्वर का 'चादिलोपे—' सूत्र से निषेध होता है। धातुस्वर से 'भ' के अकार का उदात्त स्वर होता है।

(ग) दुहन्ति—√दुह (दुह) 'प्रपूरणे'[3] धातु से वर्त्तमान काल प्रथम पुरुष बहुवचन में 'दुहन्ति' पद सिद्ध होता है।

स्वर सञ्चार—इस वाक्य में 'एव' पद का लोप होने के कारण 'दुहन्ति' पद में निघात स्वर का निषेध होता है। धातु स्वर से अथवा प्रत्यय स्वर से 'दु' या 'ह' के अच् का उदात्त स्वर होता है।

(घ) यजेत—√यज (यज्) 'देवपूजासंगतिकरणदानेषु'[4] धातु से आत्मने पद में विधिलिङ् प्रथम पुरुष एकवचन में 'तिप्तस्झि—' सूत्र से 'त' प्रत्यय होता है और 'तिङ् शित्—' सूत्र से उसकी सार्वधातुक संज्ञा होती है तथा 'कर्त्तरि शप्' सूत्र से 'शप्' (अ) विकरण प्रत्यय होता है (यज् + अ + त)। 'लिङः सीयुट्' सूत्र से 'सीयुट्' (सीय्) प्रत्यय का आगम होता है (यज् + अ + सीय् + त)। 'लिङः सलोपोऽनन्त्यस्य' सूत्र से 'सीय्' के सकार का तथा 'लोपोव्योर्वलि'

---

१. भ्वा० उ० से०। ६००।
२. भ्वा० प० से०। १।
३. द्रष्टव्य पृ० ८७।
४. भ्वा० उ० अ०। १०१४।

सूत्र से यकार का लोप होता है (यज् + अ + ई + त)। 'आद्गुणः' सूत्र से गुण एवं प्रकृति प्रत्यय मिलाने से 'यजेत' पद सिद्ध होता है।

स्वर सञ्चार—यहाँ सूत्र से 'व' का लोप होने के कारण 'यजेत' पद में प्राप्त निघात स्वर का 'चादिलोपे—' सूत्र से निषेध होता है और धातु स्वर से 'य' के अकार का उदात्त स्वर होता है।

'वै' तथा 'वाव' पद से युक्त तिङन्त पद का स्वर

९८. वैवावेति च छन्दसि। ८।१।६४।

'अहर्वैदे॒वानमासी॑त्'। 'अयं॒ वाव॒ हस्त॒ आसी॑त्'।

वैवा—छन्द में 'वै' एवं 'वाव' पद से युक्त प्रथम तिङन्त क्रियापद के निघात स्वर का विकल्प से निषेध होता है।

अह—(उदाहरण); जैसे—'—वै—आसी॑त्'[1]क। '—वाव—आसी॑त्'[2]क।

टि० (क) आसी॑त्—√अस (अस्) 'भुवि'[3] धातु लङ् लकार प्रथम पुरुष एक वचन में 'तिप्तस्झि—' सूत्र से 'तिप्' (ति) प्रत्यय होता है (अस् + ति)। 'आडजादीनाम्' सूत्र से उदात्त 'आट्' (आ) का आगम होता है (आ + अस् + ति)। 'इतश्च' सूत्र से 'ति' के इकार का लोप होता है (आ + अस् + त्)। 'अस्तिसिचोऽपृक्ते' सूत्र से 'ईट्' (ई) का आगम तथा दीर्घ होकर 'आसीत्' पद सिद्ध होता है।

स्वरसञ्चार—दोनों उदाहरणों में क्रमशः 'वै' एवं 'वाव' पद का योग रहने के कारण 'आसीत्' पद में प्राप्त निघात स्वर का 'वैवावेति च—' सूत्र से निषेध होता है? इस पद में आगम कृत उदात्त आकार का स्वर रहता है।

---

१. 'देवों का दिन था'।

२. 'यह प्रसिद्ध हाथ था'।

३. अ० प० सं० । १०६५।

'एक' तथा 'अन्य' पद से युक्त तिङन्त पद का स्वर

९९. एकान्याभ्यां समर्थाभ्याम् । ८ । १ । १६५ ।

आभ्यां युक्ता प्रथमा तिङ् विभक्तिर्नानुदात्ता छन्दसि । 'अजा मे॒कां जिन्व॑ति अजामे॒कां र॑क्षति' । 'तयो॒र॒न्यः पिप्प॑लं स्वा॒द्वत्ति अनश्नन्न॒न्यो अभिचा॑कशीति[१] । 'समर्थाभ्याम् किम् ? एको देवानुपा॑तिष्ठत् । एक इति संख्यापरं नान्यार्थम् ।

एका—वेद में समान अर्थ वाले 'एक' तथा 'अन्य' पद से युक्त प्रथम तिङन्त क्रियापद के निघात स्वर का विकल्प से निषेध होता है ।

आभ्याम्—इनसे युक्त प्रथम तिङ् विभक्ति प्रत्ययान्त स्वर का वेद में निघात स्वर नहीं होता; जैसे— '—एकां जिन्वति—रक्षति'[२क] । 'अन्यः—अत्ति—चाकशीति'ख ।

प्रस्तुत सूत्र में 'समर्थाभ्याम्' पद का ग्रहण क्यों किया गया है । इस पद का ग्रहण संख्यावाचक एक शब्द के योग में तिङन्त क्रिया पद के निघात स्वर के निषेध के लिये है; जैसे 'एको—उपातिष्ठत्'[३ग] । यहाँ 'एक' शब्द संख्यावाचक है, अन्यार्थक नहींघ ।

टि० (क) जिन्व॑ति—√ जिवि (जिव्) प्रीणने[४] धातु से 'इदितो नुम् धातोः' सूत्र से 'नुम्' (न्) का आगम होकर वर्तमान काल लट् लकार प्रथम पुरुष एकवचन में तिप्तस्झि—' सूत्र से तिप् (ति) प्रत्यय होता है (जिन्व + ति) । 'तिङ्शित्—' सूत्र से 'ति' की सार्वधातुक संज्ञा होती है और 'कर्तरि शप्' सूत्र से 'शप्' (अ) विकरण प्रत्यय होता है (जिन्व + अ + ति) प्रकृति प्रत्यय मिलाने से 'जिन्वति' पद सिद्ध होता है ।

---

१. ऋ० सं० । १ । १६४ । २० ।

२. 'एक बकरी (प्रकृति) को पसन्द करता है और दूसरा प्रजा को रक्षा करता है । उनमें से एक (जीवात्मा) स्वादिष्ट पीपल का फल खाता है और दूसरा दीप्त होता है ।

३. एक देवों के समीप गया ।

४. भ्वा० प० सं० । ५९४ ।

स्वर सञ्चार—यहाँ 'अन्य' अर्थ में प्रयुक्त 'एक' शब्द के योग में 'जिन्वति' क्रिया पद में प्राप्त निघात स्वर का 'एकान्याभ्यां—' सूत्र से निषेध होता है। इस पद में धातु स्वर से 'जि' के इकार का उदात्त स्वर होता है।

(ख) अत्ति—√अद (अद्) 'भक्षणे'[1] धातु से वर्तमान काल लट् लकार प्रथम पुरुष एकवचन में 'तिप्तस्झि—'सूत्र से 'तिप्' (ति) प्रत्यय होता है (अद् + ति) । 'तिङ्शित्—' सूत्र से 'ति' की सार्वधातुक संज्ञा होती है और 'कर्तरि शप्' सूत्र 'शप्' विकरण प्रत्यय होता है किन्तु 'अदिप्रभृतिभ्यः शपः' सूत्र से उसका लोप (लुक्) होकर 'खरि च' सूत्र से सन्धिकार्य करने पर 'अत्ति' पद सिद्ध होता है।

स्वर सञ्चार—यहाँ भी 'एकान्याभ्यां—' सूत्र से 'अन्य' शब्द का योग रहते 'अत्ति' पद के निघात स्वर का निषेध होता है। धातु स्वर से अकार का उदात्त स्वर है।

(ग) इस पद में 'तिङ्ङतिङः' सूत्र से निघात होता है।

(घ) 'एक' शब्द के अर्थ—

एकोऽन्यार्थे प्रधाने च प्रथमे केवले तथा ।
साधारणे समानेऽल्पे संख्यायाश्च प्रयुज्यते ॥

यद्वृत्त पद से युक्त तिङन्त पद का स्वर

१००. यद्वृत्तान्नित्यम् । ८ । १ । ६६ ।

यत्र पदे यच्छब्दस्ततः परं तिङन्तं नानुदात्तम् । 'यो भुङ्क्ते'[2] यदद्र्यङ्वायुर्वाति[3] । अत्र व्यवहिते कार्यमिष्यते ।

यद्—यत् शब्द से निष्पन्न होनेवाले सभी विभक्तियों के पद तथा तर एवं तम प्रत्ययान्त पद (यद्वृत्त) के बाद वर्तमान तिङन्त पद के निघात स्वर का नित्य निषेध होता है।

---

१. अ० प० अ० । १०१२ ।
२. अ० सं० । १० । १२१ । १० ।
३. तै० सं० । ५ । १ । १ ।

यत्र—जिस पद में 'यत्' शब्द का प्रयोग रहता है उसके बाद विद्यमान तिङन्त पद के अनुदात्त स्वर का निषेध होता है; जैसे—'यो भुङ्क्ते'[१]क। 'यदद्र्यङ्—वाति'[२]ख ।

इस सूत्र के द्वारा विहित होने वाली स्वरविधि व्यवधान होने पर भी प्रवृत्त होती है ।

टि० (क) भुङ्क्ते—√भुज (भुज्) 'पालनाभ्यवहारयोः'[३] धातु से वर्तमान काल प्रथम पुरुष एकवचन में 'तिप्तस्झि—' सूत्र से 'त' प्रत्यय होता है (भुज् + त)। 'टित आत्मनेपदानां टेरे' सूत्र से 'त' के अकार को एत्व होता है (भुज् + ते)। 'रुधादिभ्यः श्नम्' सूत्र से 'श्नम्' (न्) विकरण प्रत्यय होता है (भु + न + ज् + ते)। 'श्नसोरल्लोपः' सूत्रसे 'न' के अकार का लोप होता है (भु + न् + ज् + ते)। 'चोः कुः' सूत्र से 'ज्' को 'ग्' होता है (भु + न् + ग् + ते)। 'खरि च' सूत्र से 'ग्' को 'क्' होता है (भु + न् + क् + ते)। अनुस्वार एवं परसवर्ण रूप सन्धि कार्य करने पर सिद्ध होता है ।

(ख) वाति—√वा 'गतिगन्धनयोः'[४] धातु से लट् लकार प्रथम पुरुष एकवचन में 'तिप्तस्झि—सूत्र से तिप् (ति) प्रत्यय होकर 'वाति' पद सिद्ध होता है ।

स्वर सञ्चार—यहाँ भी 'यदद्र्यङ्' पद का योग होने के कारण 'यद्वृत्तान्नित्यम्' सूत्र से क्रियापद के निघात स्वर का निषेध होता है। धातु स्वर से 'वा' के आकार का उदात्त स्वर है।

गतिसंज्ञक शब्द का स्वर

१०१. गतिर्गतौ । ८।१।७० ।

अनुदात्तः। 'अभ्युद्धरति'। गतिः किं ? दत्तः प्रपचति'। गतौ किं ? 'आमन्द्रैरिन्द्रहरिभिर्याहिमयूररोमभिः'।[५]

---

१. 'जो भोजन करता है'।

२. 'जैसे वायु बहता है'।

३. रु० प० (भुजोऽनवने—आ०) अ० १४५५ ।

४. अ० प० अ० । १०५० ।

५. ऋ० सं० ।३।४५।१।, वा सं० । ५३ । तथा अथर्व० सं० ।७।११७।१।

गति—गतिसंज्ञक उपसर्ग परे रहते पूर्ववर्त्ती गतिसंज्ञक उपसर्ग का अनुदात्त स्वर होता है।

अनु—अनुदात्त स्वर होता है; जैसे—'अभ्युद्धरति'[१] प्रस्तुत सूत्र में 'गतिः' पद का ग्रहण क्यों किया गया है? इस पद का ग्रहण गतिसंज्ञक उपसर्ग परे रहते पूर्व में विद्यमान गतिसंज्ञक पद से भिन्न पद के निघातस्वर के निषेध के लिये है; जैसे—दत्तः प्रपचति[२]ख।

प्रस्तुत सूत्र में 'गतौ' पद का ग्रहण क्यों किया गया है? इस पद का ग्रहण केवल क्रियापद परे रहते उससे पूर्व विद्यमान गतिसंज्ञक पद के निघातस्वर के निषेध के लिये है; जैसे—'[३]ग।

टि० (क) अभ्युद्धरति—'अभि + उत् + हरति=अभ्युद्धति'। यहाँ गतिसंज्ञक 'उत्' परे रहते पूर्ववर्त्ती 'अभि' पद का 'गतिर्गतौ' सूत्र से अनुदात्त स्वर होता है।

(ख) यहाँ गतिसंज्ञक 'प्र' परे रहते उससे पूर्व विद्यमान 'दत्तः' पद का प्रत्यय स्वर से अन्तोदात्त स्वर होता है।

(ग) निपात होने के कारण 'निपाता आद्युदात्ताः' सूत्र से 'आ' का उदात्त स्वर होता है।

—: ० :—

---

१. 'पास से अलग करता है'।
२. 'दत्त पकाता है'।
३. हे देव! मतवाले तथा मोर के रंग की तरह के घोड़ों से आओ'।

परिशिष्ट

[१]

मन्त्रस्वरसञ्चार

वैदिक साहित्य में पदों में स्वरसञ्चार के साथ मन्त्रों में स्वरसञ्चार का भी विशेष महत्त्व है। किसी मन्त्र में स्वरसञ्चार करने के लिये सामान्यतया छः कार्य किये जाते हैं।

१. प्रत्येक पद में पदसिद्धि के अनुसार स्वरसञ्चार।
२. पदपाठ में स्वरपरिवर्तन।
३. संहिता पाठ में उदात्त स्वरसञ्चार।
४. संहिता पाठ में अनुदात्त स्वरसञ्चार।
५. संहिता पाठ में स्वरित स्वरसञ्चार।
६. संहिता पाठ में प्रचय स्वरसञ्चार।

इन छः कार्यों को क्रमशः करना चाहिये। इनके द्वारा मन्त्रगत मुख्य स्वर के साथ अन्य स्वर भी सञ्चरित हो जाते हैं। जैसे—ऋग्वेद की पहली ऋचा 'अ॒ग्नि-मी॑ळे—' को देखें—

१. प्रत्येक पद में पदसिद्धि के अनुसार स्वरसञ्चार—'अ॒ग्निम्'—'अग्नि' शब्द व्युत्पन्न तथा अव्युत्पन्न प्रातिपादिक के रूप में सिद्ध किया जाता है। व्युत्पन्न प्रातिपादिक के रूप में इसकी सिद्धि √अगि (अग्) 'गतौ' धातु से 'नुम्' का आगम तथा 'अङ्गेर्नलोपश्च' सूत्र से नकार का लोप एवं 'नि' प्रत्यय होकर 'अग्नि' शब्द बनता है। अव्युत्पन्न प्रातिपदिक के रूप में 'अग्नि' सिद्ध शब्द है। दोनों ही स्थितियों में प्रातिपदिक संज्ञा करके द्वितीया एकवचन में विभक्ति कार्य करने से 'अग्निम्' पद सिद्ध होता है।

स्वरसञ्चार—व्युत्पन्न प्रातिपदिक की सिद्धि के अनुसार 'आद्युदात्तश्च' सूत्र के द्वारा प्रत्यय स्वर से अथवा अव्युत्पन्न प्रातिपदिक की सिद्धि के अनुसार 'फिषोऽन्त-उदात्तः' या 'घृतादीनां च' सूत्र से 'नि' के इकार का उदात्त स्वर होता है। 'अनुदात्तं—' सूत्र से अवशेष अकार का अनुदात्त स्वर होता है (अ॒ग्निम्)।

ई॒ळे—√ईल (ईल्) 'स्तुतौ' धातु से लट् लकार उत्तम पुरुष एकवचन में 'तिप्तस्झि—' सूत्र स 'इट्' (इ) प्रत्यय होता है (ईल् + इ)। 'टित आत्मनेपदानां टेरे' सूत्र से इकार को एकार होता है (ईल् + ए)। 'द्वयोश्चास्य स्वरयो—' सूत्र से 'ल्' को 'ळ्' होकर 'ईळे' पद सिद्ध होता है।

स्वरसञ्चार—'धातोः' सूत्र से ईकार का और 'आद्युदात्तश्च' सूत्र से 'ळे' के एकार का उदात्त स्वर प्राप्त है, किन्तु सतिशिष्ट नियम से 'ळे' के एकार का ही उदात्त स्वर होता है और परिशेषात् ईकार का 'अनुदात्तं—' सूत्र से अनुदात्त स्वर होता है (ईळे)।

पुरोहि॑तम्—'पुरः हितम् = पुरोहितम्' इस पद में 'कुगतिप्रादयः' सूत्र से समास होता है। प्रातिपदिक संज्ञा करके द्वितीया एकवचन में विभक्ति कार्य करने से 'पुरोहितम्' पद सिद्ध होता है।

स्वरसञ्चार—'गतिरनन्तरः' सूत्र से पूर्वपदभूत 'पुरः' पद का प्रकृतिस्वर होता है। 'आद्युदात्तश्च' सूत्र के द्वारा 'रो' के अकार का उदात्त स्वर होता है। शेष अचों का 'अनुदात्तं—' सूत्र से अनुदात्त स्वर होता है (पु॒रोहि॒त॒म्)। 'उदात्तादनु—' सूत्र से 'हि' के अनुदात्त इकार का स्वरित स्वर होता है (पु॒रोहि॑त॒म्)। 'स्वरितात्—' सूत्र से 'त' के अनुदात्त अकार का प्रचयस्वर होता है (पु॒रोहि॑तम्)।

य॒ज्ञस्य॑—√यज (यज्) 'देवपूजासंगतिकरणदानेषु' धातु से 'यजयाचयतविच्छप्रच्छरक्षो नङ्' सूत्र से 'नङ्' (न) प्रत्यय होता है (यज् + न)। 'स्तोः श्चुना श्चुः' सूत्र से 'न्' को 'ञ्' होकर 'यज्ञ' शब्द बनता है। उसकी प्रातिपदिक संज्ञा करके षष्ठी एकवचन में विभक्ति कार्य करने से 'यज्ञस्य' पद सिद्ध होता है।

स्वरसञ्चार—'धातोः' सूत्र से 'यज्' धातु के अकार का और 'आद्युदात्तश्च' सूत्र से 'न' के आकार का उदात्त स्वर प्राप्त है। यहाँ सतिशिष्ट नियम के माध्यम से 'अनुदात्तं—' सूत्र के द्वारा 'ज्ञ' के आकार का उदात्त स्वर होता है और अवशिष्ट 'य' के अकार का अनुदात्त स्वर होता है (य॒ज्ञ)। उसके विहित 'स्य' विभक्ति प्रत्यय का 'अनुदात्तौ—' सूत्र से अनुदात्त स्वर है (य॒ज्ञस्य॒)। उदात्तादनु— सूत्र से 'स्य' के अकार का स्वरित स्वर होता है (य॒ज्ञस्य॑)।

दे॒वम्—√दिवु (दिव्) 'क्रीडाविजिगीषाव्यवहारद्युतिस्तुतिमोदमदस्वप्नकान्तिगतिषु' धातु से 'नन्दिग्रहि—' सूत्र के द्वारा 'अच्' (अ) प्रत्यय होता है (दिव् + अ)। 'पुगन्तलघू—' सूत्र से 'दि' के इकार को गुण होकर 'देव' शब्द

बनता है। उसकी प्रातिपदिक संज्ञा करके द्वितीया एकवचन में विभक्ति कार्य करने से 'देवम्' पद सिद्ध होता है।

स्वरसञ्चार—चित् प्रत्ययान्त होने के कारण 'चितः' सूत्र से 'व' के अकार का उदात्त स्वर होता है और अवशेष 'दे' के एकार को 'अनुदात्तं—' सूत्र से अनुदात्त स्वर होता है। (दे॒वम्)

ऋ॒त्विजं॑म्—'ऋतौ यजति = ऋत्विक्' इस विग्रह के अनुसार 'ऋतु + यज्' से 'ऋत्विग्दधृक्—' सूत्र के द्वारा 'क्विन्' प्रत्यय होता है और उसका सर्वापहार लोप होता है (ऋतु + यज्)। 'वचिस्वपियजादीनां किति' सूत्र से 'यज्' के यकार को इकार होता है (ऋतु + इ अ ज्)। 'सम्प्रसारणाच्च' सूत्र से पूर्वरूप होता है (ऋतु + इज्)। 'इको यणचि' सूत्र से 'तु' के उकार को 'व्' यण् होकर 'ऋत्विज्' शब्द बनता है। उसकी प्रातिपदिक संज्ञा करके द्वितीया एकवचन में विभक्ति कार्य करने से 'ऋत्विजम्' पद सिद्ध होता है।

स्वरसञ्चार—'गतिकारक—' सूत्र से उत्तरपदभूत 'इज्' का प्रकृति स्वर होता है। 'धातोः' सूत्र से इकार का उदात्त स्वर होता है। 'अनुदात्तं—' सूत्र से शेष अचों का अनुदात्त स्वर होता है (ऋ॒त्विज॒म्)। 'उदात्तादनु—' सूत्र से 'ज' के अनुदात्त अकार का स्वरित स्वर होता है (ऋ॒त्विजं॑म्)।

होता॑रम्—√हु 'दानादनयोः' धातु से 'नप्तृनेष्टृ—' सूत्र के द्वारा 'तृन्' प्रत्यय होकर 'होतृ' शब्द की निपातनात् सिद्धि होती है। उसकी प्रातिपदिक संज्ञा करके द्वितीया एकवचन में विभक्ति कार्य करने पर 'होतारम्' पद सिद्ध होता है।

स्वरसञ्चार—'धातोः' सूत्र से 'हो' के ओकार का तथा 'आद्युदात्तश्च' सूत्र से 'ता' के आकार का उदात्त स्वर प्राप्त हैं। दोनों को बाधकर 'ञ्नित्यादिर्नित्यम्' सूत्र से नित् होने के कारण 'हो' के ओकार का उदात्त स्वर होता है और शेष अचों का 'अनुदात्तं—' सूत्र से अनुदात्त स्वर होता है (होता॒र॒म्)। 'उदात्तादनु—' सूत्र से 'ता' के आकार का स्वरित स्वर होता है (होता॑र॒म्)। 'स्वरितात्—' सूत्र से 'र' के अकार का प्रचयस्वर होता है (हो॒ता॑रम्)।

र॒त्न॒धात॑मम्—'रत्नानि दधाति = रत्नधाः' इस पद में 'उपपदमतिङ्' सूत्र से समास होता है। अतिशय अर्थ में 'तमप्' (तम) प्रत्यय होकर 'रत्नधातम' शब्द बनता है। उसकी प्रातिपदिक संज्ञा करके द्वितीया एकवचन में विभक्ति कार्य करने से 'रत्नधातमम्' पद सिद्ध होता है।

स्वरसञ्चार—'गतिकारक—' सूत्र से 'रत्नधा' शब्द में 'धा' के आकार का प्रकृति स्वर होता है और 'तमप्' प्रत्यय का पित् होने के कारण अनुदात्त स्वर होता है। परिशेषात् 'अनुदात्तं—' सूत्र से सभी अचों का अनुदात्त स्वर होता है (र॒त्न॒धा॒त॒म॒म्)। 'उदात्तादनु—सूत्र से 'त' के अनुदात्त अकार का स्वरित स्वर होता है (र॒त्न॒धात॑म॒म्)। 'स्वरितात्—' सूत्र से 'म' के अनुदात्त अकार का प्रचय स्वर होता है (र॒त्न॒धात॑मम्)।

इस प्रकार उपर्युक्त मन्त्र से सभी पदों का स्वतन्त्र स्वरसञ्चार हो जाता है।

२. पदपाठ में स्वर परिवर्तन—उपर्युक्त मन्त्र के पदों को पदपाठ के रूप में परिणत होने पर केवल 'ई॒ळे' पद के स्वर में 'तिङ्ङतिङः' सूत्र से सर्वानुदात्त स्वर हो जाता है।

पदपाठ—अ॒ग्निम्। इ॒ळे॒। पु॒रः ऽहि॑तम्।
यज्ञस्य॑। दे॒वम्। ऋ॒त्विज॑म्॥
होतार॑म्। र॒त्न॒धाऽत॑मम्॥

३. संहिता पाठ में उदात्त स्वरसञ्चार—उपर्युक्त पदपाठ का संहिता पाठ में परिवर्तन होने पर उदात्त स्वर का परिवर्तन नहीं होता है अन्य स्वर तारतम्यानुसार परिवर्तित होते हैं। पदपाठ के स्वर के अनुसार संहिता पाठ में ताराङ्कित अचों का उदात्त स्वर है —

अग्निमीळे पुरोहितम्
यज्ञस्य देवमृत्विजम्।
होतारं रत्नधातमम्॥

४. संहिता पाठ में अनुदात्त स्वरसञ्चार—उदात्त स्वर वाले अचों से अतिरिक्त अचों का 'अनुदात्तं पदमेकवर्जम्' सूत्र से अनुदात्त स्वर होता है—

अ॒ग्निमी॒ळे॒ पु॒रोहि॒त॒म्
य॒ज्ञस्य॒ दे॒वमृ॒त्विज॒म्।
होता॒रं र॒त्न॒धात॒म॒म्॥

उपर्युक्त निदर्शन में अचिह्नित उदात्त हैं।

५. संहिता पाठ में स्वरित स्वरसञ्चार—'उदात्तादनु—' सूत्र से उदात्त के बाद वर्तमान अनुदात्तों का, बाद में उदात्त या स्वरित न रहने पर, स्वरित होता है—

अ॒ग्निमी॑ळे॒ पु॒रोहि॑तं॒
य॒ज्ञस्य॑ दे॒वमृ॒त्विज॑म् ।
होता॑रं र॒त्न॒धात॑म॒म् ॥

६. संहिता पाठ में प्रचय स्वरसञ्चार—'स्वरितात्—' सूत्र से स्वरितों के बाद के अनुदात्तों का, उसके बाद उदात्त या स्वरित न होने पर, प्रचय स्वर होता है। प्रचय स्वर का कोई चिह्न नहीं होता है—

अ॒ग्निमी॑ळे पुरोहि॑तम्
य॒ज्ञस्य॑ दे॒वमृ॒त्विज॑म् ।
हो॒तार॑ं रत्न॒धात॑मम् ।

इस प्रकार 'अ॒ग्निमी॑ळे—' इस पूरे मन्त्र में स्वरसञ्चार हो जाता है। इसी तरह अन्य मन्त्रों में भी स्वर सञ्चार किया जाता है। मन्त्रों में स्वरसञ्चार की यह संक्षिप्त विधि है।